महान व्यक्तित्व 8

E-BOOKS DEVELOPED BY

1. Dr.Sanjay Sinha Director SCERT,U.P,Lucknow
2. Ajay Kumar Singh J.D.SSA,SCERT,Lucknow
3. Alpa Nigam (H.T) Primary Model School, Tilauli Sardarnagar,Gorakhpur
4. Amit Sharma (A.T) U.P.S, Mahatwani ,Nawabganj, Unnao
5. Anita Vishwakarma (A.T) Primary School ,Saidpur,Pilibhit
6. Anubhav Yadav (A.T) P.S.Gulariya,Hilauli,Unnao
7. Anupam Choudhary (A.T) P.S,Naurangabad,Sahaswan,Budaun
8. Ashutosh Anand Awasthi (A.T) U.P.S,Miyanganj,Barabanki
9. Deepak Kushwaha (A.T) U.P.S,Gazaffarnagar,Hasanganz,unnao
10. Firoz Khan (A.T) P.S,Chidawak,Gulaothi,Bulandshahr
11. Gaurav Singh (A.T) U.P.S,Fatehpur Mathia,Haswa,Fatehpur
12. Hritik Verma (A.T) P.S.Sangramkheda,Hilauli,Unnao
13. Maneesh Pratap Singh (A.T) P.S.Premnagar,Fatehpur
14. Nitin Kumar Pandey (A.T) P.S, Madhyanagar, Gilaula , Shravasti
15. Pranesh Bhushan Mishra (A.T) U.P.S,Patha,Mahroni Lalitpur
16. Prashant Chaudhary (A.T) P.S.Rawana,Jalilpur,Bijnor
17. Rajeev Kumar Sahu (A.T) U.P.S.Saraigokul, Dhanpatganz ,Sultanpur
18. Shashi Kumar (A.T) P.S.Lachchhikheda,Akohari, Hilauli,Unnao
19. Shivali Gupta (A.T) U.P.S,Dhaulri,Jani,Meerut
20. Varunesh Mishra (A.T) P.S.Madanpur Paniyar,Lambhua,Sultanpur

पाठ - 1

G6YY2D

सावित्री

बहुत प्राचीन युग की बात है, भारतवर्ष के मद्र देश में (जो आजकल दक्षिणी कश्मीर है) अश्वपति नाम के राजा राज्य करते थे। वह बहुत धर्मात्मा, न्यायकारी और दयालु राजा थे। इनके कोई सन्तान न थी। ज्यों-ज्यों अवस्था बीतती गयी इन्हें संतान न होने से चिन्ता हुई। ज्योतिषियों ने इनकी जन्मकुण्डली देखकर बताया कि आपके ग्रह बता रहे हैं कि आपके सन्तान होगी, इसके लिए आप सावित्री देवी की पूजा कीजिए। राजा अश्वपति राज्य छोड़कर वन चले गये। अट्ठारह वर्ष तक उन्होंने तपस्या की, तब उन्हें वरदान मिला और कन्या हुई। उसका नाम उन्होंने सावित्री रखा।

सावित्री अद्वितीय सुन्दरी थी। उसकी सुन्दरता और गुण की प्रशंसा दूर-दूर तक फैलने लगी। ज्यों-ज्यों सावित्री बढ़ने लगी त्यों-त्यों उसका रूप निखरने लगा। पिता को उसके विवाह की भी चिन्ता होने लगी। अश्वपति चाहते थे कि उसी के अनुरूप पति भी मिले, किन्तु कोई मिलता न था।

सावित्री का चित्त बहलाने के लिए अश्वपति ने उसे तीर्थ-यात्रा के लिए भेज दिया और उसे आज्ञा दी कि तुझे वर चुन लेने की स्वतन्त्रता देता हूँ। सावित्री का रथ जा रहा था कि उसे एक अद्भुत स्थान दिखायी दिया। अनेक सुन्दर वृक्ष थे, चारों ओर हरियाली थी। वहीं एक युवक घोड़े के बच्चे के साथ खेल रहा था। उसके सिर पर जटा बँधी थी। छाल पहने हुए था। मुख पर तेज था। सावित्री ने देखा और मन्त्री से कहा कि आज यहीं विश्राम करना चाहिए। रथ जब ठहरा, वह युवक परिचय पाने के लिए उनके पास आया। उसे जब पता लगा कि वह राजकुमारी है, बड़े सम्मान से अपने पिता के आश्रम में ले गया। उसने यह भी बताया कि मेरे माता-पिता दृष्टिहीन हैं। मेरे पिता किसी समय शाल्व देश के राजा थे। वह इस समय यहाँ तपस्या कर रहे हैं। मेरा नाम सत्यवान है।

दूसरे दिन सावित्री घर लौट गयी। बड़ी लज्जा तथा शालीनता से उसने सत्यवान से विवाह करने की अनुमति माँगी। अश्वपति इससे बहुत प्रसन्न हुए कि सावित्री को उसके अनुरूप वर मिल गया, किन्तु बाद में पता चला कि सत्यवान की आयु बहुत कम है, वह एक साल से अधिक जीवित नहीं रहेगा। इससे सावित्री के पिता को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सावित्री

को सब प्रकार समझाया कि ऐसा विवाह करना जन्म भर के लिए दु:ख मोल लेना है। सावित्री ने कहा, "पिताजी, मुझे इस सम्बन्ध में आपसे कुछ कहते संकोच तथा लज्जा का अनुभव हो रहा है। मैं विनम्रता के साथ यह निवेदन करना चाहती हूँ कि आपने मुझे वर चुनने की स्वतन्त्रता दी थी। मैंने सत्यवान को चुन लिया। उससे हटना आदर्श से हटना होगा और युग-युग के लिए अपने तथा अपने परिवार के ऊपर कलंक लगाना होगा।"

अश्वपति निरुत्तर हो गए। उन्होंने विद्वानों को बुलाकर विचार किया। अन्त में राजा अश्वपति सावित्री को तथा और लोगों को साथ लेकर सत्यवान के पिता के आश्रम में विवाह करने के लिए चले। जब आश्रम निकट आया तब सबको छोड़कर आश्रम में गए और सत्यवान के पिता द्युमत्सेन से सावित्री का सत्यवान के साथ विवाह करने का विचार प्रकट किया। द्युमत्सेन ने पहले तो अस्वीकार कर दिया।

वह बोले, "महाराज, मैं दरिद्र हूँ। तपस्या कर रहा हूँ, यद्यपि किसी समय राजा था, किन्तु अब तो कंगाल हूँ। राजकुमारी को किस प्रकार अपने यहाँ रख सकूँगा ?"

अश्वपति ने उन्हें सारी स्थिति बता दी और विवाह कर लेने के लिए आग्रह किया। अन्त में सत्यवान के पिता मान गये और वहीं वन में दोनों का विवाह हो गया। अश्वपति बहुत-सा धन, अलंकार आदि दे रहे थे। द्युमत्सेन ने कुछ भी नहीं लिया। उन्होंने कहा, "मुझे इनसे क्या काम ?"

सावित्री यमराज से अपने पति के प्राण माँग रही हैं

विवाह के पश्चात् सावित्री वहीं आश्रम में रहने लगी। उसने अपने सास-ससुर तथा पति सत्यवान की सेवा में अपना मन लगा दिया। सत्यवान और सावित्री सदा लोक- कल्याण

तथा उपकार की बात करते थे।
सावित्री दिन भर घर का काम-काज करती थी। जब उसे अवकाश मिलता था वह भगवान से बड़ी लगन के साथ प्रार्थना करती थी कि मेरा पति दीर्घायु हो। ज्यों-ज्यों समय निकट आता गया उसकी चिन्ता बढ़ती गयी। जब सत्यवान के जीवन के तीन दिन शेष रह गये, सावित्री ने भोजन भी छोड़ दिया और दिन-रात प्रार्थना करने लगी। लोग उसे भोजन करने के लिए समझाते किन्तु वह सबका अनुरोध टालती रही। तीसरे दिन जब सत्यवान जंगल मंे लकड़ी काटने जा रहे थे, सावित्री भी उनके साथ चली। सत्यवान ने समझाया कि तुम तीन दिन से व्रती हो, तुम न चलो किन्तु वह नहीं मानीं और सत्यवान के साथ वन को चली गयी।
सत्यवान एक पेड़ पर लकड़ी काटने के लिए चढ़ गया। थोड़ी देर में उसने बहुत सी लकड़ी काटकर गिरा दी। सावित्री ने कहा, ‘‘अब लकड़ी बहुत है, उतर आइए।’’ सत्यवान पेड़ से उतरा। उसने कहा, ‘‘मेरे सिर मंे चक्कर आ रहा है।’’ धीरे-धीरे सिर मंे चक्कर बढ़ने लगा। सत्यवान धीरे-धीरे बेहोश होने लगा और कुछ ही क्षण में उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। यद्यपि सावित्री जानती थी फिर भी जब उसने अपने पति को निष्प्राण देखा, वह विलाप करने लगी। इसी समय उसे ऐसा जान पड़ा कि कोई भयानक किन्तु तेजपूर्ण परछायीं उसके सामने खड़ी है। उसे देखकर सावित्री भयभीत हो गयी। न जाने कहाँ से उसमें बोलने का साहस आ गया। उसने कहा, ‘‘प्रभो, आप कौन हैं ?’’ उस छाया ने कहा, ‘‘मैं यमराज हूँ। मुझे लोग धर्मराज भी कहते हैं। मैं तुम्हारे पति के प्राण लेने के लिए आया हूँ।
तुम्हारे पति की आयु पूरी हो गयी। मैं उसके प्राण लेकर जा रहा हूँ।’’ इतना कहकर यमराज सत्यवान के प्राण लेकर चलने लगे। सत्यवान का शरीर धरती पर पड़ा रहा। सावित्री भी यमराज के पीछे-पीछे चलने लगी।
थोड़ी देर बाद यमराज ने मुड़कर पीछे देखा तो सावित्री भी चली आ रही है। यमराज ने कहा- ‘‘सावित्री, तुम कहाँ चली आ रही हो ? जिसकी आयु शेष है वह हमारे साथ नहीं आ सकता। लौट जाओ।’’ इतना कहकर यमराज आगे बढ़े। कुछ देर बाद यमराज ने फिर मुड़कर देखा तो सावित्री चली आ रही है। यमराज ने कहा, ‘‘तुम क्यों मेरे पीछे आ रही हो ?’’सावित्री बोली, ‘‘महाराज, मैं अपने पति को कैसे छोड़ सकती हूँ ?’’ यमराज ने कहा, ‘जो ईश्वर का नियम है वह नहीं टल सकता। तुम चाहो तो कोई वरदान मुझसे माँग लो। सत्यवान का जीवन छोड़कर और जो माँगना हो माँगो और चली जाओ।’’ सावित्री ने बहुत सोचकर कहा, ‘‘मेरे सास और ससुर देखने लगें और उन्हें उनका राज्य मिल जाए।’’ यमराज ने कहा, ‘‘ऐसा ही होगा।’’
थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि सावित्री फिर पीछे-पीछे आ रही है। यमराज ने सावित्री को बहुत समझाया और कहा, ‘‘अच्छा, एक वरदान और माँग लो।’’ सावित्री ने कहा, ‘‘मेरे पिता को संतान प्राप्त हो जाएं।’’ यमराज ने यह वरदान भी दे दिया और आगे बढ़े। कुछ

दूर जाने पर यह जानने के लिए कि सावित्री गयी, उन्होंने पीछे गर्दन मोड़ी। देखा, सावित्री चली आ रही है। उन्होंने कहा, "सावित्री ! तुम क्यों चली आ रही हो ? ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई व्यक्ति सशरीर मेरे साथ जा सके। इसलिए तुम लौट जाओ।" सावित्री ने कहा, "मैं इन्हें छोड़कर नहीं जा सकती, शरीर का त्याग कर सकती हूँ।"

यमराज चकराये कि यह कैसी स्त्री है। इतनी दृढ़। कोई बात ही नहीं मानती। पता नहीं, क्या करना चाहती है? उन्होंने कहा, "अच्छा, एक वरदान मुझसे और माँग लो और मेरा कहना मानो। भगवान की जो आज्ञा है उसके विरुद्ध लड़ना बेकार है।" सावित्री ने कहा, "महाराज, आप यदि वरदान ही देना चाहते हैं तो यह वरदान दीजिए कि मुझे संतान प्राप्त हो जाए।" यमराज ने कहा, "ऐसा ही होगा।" यमराज आगे बढ़े किन्तु कुछ ही दूरी पर उन्हें ऐसा लगा कि वह लौटी नहीं। यमराज को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा, 'तुम मेरा कहना नहीं मानती हो।' सावित्री ने कहा, "धर्मराज ! आप मुझे संतान प्राप्ति का आशीर्वाद दे चुके हैं और मेरे पति को अपने साथ लिये जा रहे हैं। यह कैसे संभव है ?"

यमराज को अब ध्यान आया। उन्होंने सत्यवान के प्राण छोड़ दिये और सावित्री की दृढ़ता और धर्म की प्रशंसा करते हुए चले गये। इधर सावित्री उस पेड़ के पास पहुँची जहाँ सत्यवान का शरीर पड़ा था।

सावित्री ने अपनी दृढ़ता तथा तपस्या के बल से असम्भव बात सम्भव बना दी। तप और दृढ़ता में इतना बल होता है कि उसके आगे देवताओं को भी झुक जाना होता है। इसी कारण सावित्री हमारे देश की नारियों में सिरमौर हो गयी और आज तक वह हमारा आदर्श बनी है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सावित्री कौन थी? उसका विवाह किससे हुआ था ?

2. सावित्री के पिता को दुःख क्यों हुआ ?

3. सावित्री ने यमराज से कौन-कौन से वर माँगे ?

4. सावित्री ने अपने पति को पुनः कैसे प्राप्त किया ?

5. इस कहानी से क्या शिक्षा मिलती है ?

पाठ - 2

G78U41

भारतीय संस्कृति के अग्रदूत

प्राचीन काल में हमारे देश में कुछ ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होंने भारतीय संस्कृति के आलोक को दूर-दूर तक फैलाया। ऐसे महापुरुषों में महर्षि अगस्त्य, महर्षि पत॰जलि तथा ऋषि याज्ञवल्क्य का नाम सम्मान पूर्वक लिया जाता है । महर्षि अगस्त्य ने सर्वप्रथम हिन्दू धर्म, कला, संस्कृति, भाषा आदि का प्रचार सुदूर दक्षिण भारत तथा जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि द्वीपों तक किया। महर्षि पत॰जलि ने 'महाभाष्य' की रचना कर भाषा-साहित्य, धर्म, भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र आदि की गहन समीक्षा की। ऋषि याज्ञवल्क्य ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' की रचना कर सामाजिक रीतियों, परम्पराओं मान्यताओं को नियमबद्ध किया। इसीलिए इन तीनों महापुरुषों का भारतीय संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

महर्षि अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य का जन्म काशी (वाराणसी) में हुआ था। इनके जन्मकाल का निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है क्योंकि इस विषय में कोई साक्ष्य नहीं मिलता। ये शैव मत के अनुयायी थे तथा काशी-विश्वनाथ मन्दिर में पूजा-पाठ करते थे। इनके जीवन का लक्ष्य धर्म का प्रचार करना था। शैव मत के प्रचार के लिए वे दक्षिण भारत गये। इनसे पूर्व किसी ने विन्ध्याचल को पार कर दक्षिण जाने का साहस नहीं किया था।

विन्ध्याचल का दक्षिणी भाग घने जंगलों से भरा पड़ा था। अगस्त्य ने अपने परिश्रम तथा ज्ञान के बल पर स्थानीय लोगों को शिष्य बनाकर उनकी सहायता से जंगल कटवाया। यहाँ उन्होंने नगरों तथा आश्रमों की स्थापना कर यहाँ के निवासियों को कला कौशल सिखाया तथा शैव मत का प्रचार किया। पांड्य देश के राजा इन्हें देवता की भाँति पूजने लगे। यहाँ अगस्त्य ने आयुवर्दे का प्रचार किया, भाषाओं का संस्कार किया तथा मूर्तिकला का ज्ञान दिया। यहाँ धर्म, कला, संस्कृति, भाषा आदि का सशक्त प्रचार एवं स्थापना करने के बाद महर्षि अगस्त्य भारत से बाहर निकले।

भारत से बाहर महर्षि अगस्त्य समुद्री यात्राएँ करते हुए अनेक द्वीपों एवं देशों में पहुँचे। इन देशों में इन्होंने हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का प्रचार किया। इन्होंने समुद्री यात्राओं में महारत

हासिल कर ली थी इसीलिए लोग कहते हैं कि महर्षि अगस्त्य समुद्र पी गए थे। कम्बोडिया के शिलालेख के अनुसार-

ब्राह्मण अगस्त्य आर्य देश के निवासी थे। वे शैव मत के अनुयायी थे। उनमें अलौकिक शक्ति थी। उसी के प्रभाव से वे इस देश तक पहुँच सके। यहाँ आकर उन्होंने भुदेश्वर नामक शिवलिंग की पूजा अर्चना बहुत काल तक की। यहीं वे परमधाम को पधारे।

कहा जाता है कि अगस्त्य कम्बोडिया देश के आगे भी गये तथा आस-पास के द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश फैलाया। भारत से बाहर सुदूर देशों तक जाकर भारतीय संस्कृति एवं धर्म का प्रचार करने वालों में महर्षि अगस्त्य प्रथम व्यक्ति थे।

महर्षि पत°जलि

महर्षि पत°जलि प्राचीन भारत के लब्ध प्रतिष्ठ विद्धानों में से एक हैं। इनके जन्म के विषय में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है। ये पाटलिपुत्र के राजा पुष्यमित्र शुंग के समकालीन (185 से 73 ई0पू0) माने जाते हैं। ये अपने दो मुख्य कार्यों के लिए विख्यात हैं। प्रथम तो व्याकरण की पुस्तक 'महाभाष्य' के लिए तथा दूसरे पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' की टीका लिखने के लिए इन्होंने 'योगशास्त्र' की भी रचना की।

महर्षि पत°जलि ने महाभाष्य की रचना काशी में की। काशी में 'नागकुआँ' नामक स्थान पर इस ग्रन्थ की रचना हुई थी। नागपंचमी के दिन इस कुएँ के पास अब भी अनेक विद्वान एवं विद्यार्थी एकत्र होकर संस्कृत व्याकरण के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करते हैं। महाभाष्य व्याकरण का ग्रन्थ है किन्तु इसमें साहित्य, धर्म, भूगोल, समाज, रहन-सहन आदि से सम्बन्धित तथ्य मिलते हैं।

महर्षि पत°जलि की मृत्यु के दो-तीन सौ साल बाद इनकी पुस्तक लुप्त हो गयी क्योंकि उस युग में छापने की मशीन नहीं थी। हाथ से लिखी पुस्तकां े की एकाध प्रतियाँ होती थीं। आज से लगभग ग्यारह सौ वर्ष पहले कश्मीर के राजा जयादित्य ने बड़े परिश्रम से इस पुस्तक की खोज की। उसने पूरी पुस्तक लिखवाकर अपने राज्य में उसका प्रचार करवाया। तब से आज तक इसकी पढ़ाई होती चली आ रही है। आज जो महाभाष्य का ज्ञान नहीं रखता उसे संस्कृत भाषा का मर्मज्ञ नहीं माना जाता। पत°जलि ने संस्कृत भाषा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। इतने प्राचीन काल में विश्व के किसी भी देश में व्याकरण का ऐसा विद्वान नहीं हुआ। महर्षि पत°जलि उन महान पुरुषों में से हैं जो एक देश में जन्म लेकर भी पूरे विश्व के हो जाते हैं।

ऋषि याज्ञवल्क्य

ऋषि याज्ञवल्क्य के जन्मस्थान एवं समय के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता। याज्ञवल्क्य नाम के दो विद्धान हुए हैं। एक महाराज जनक के समय में थे तथा दूसरे युधिष्ठिर के शासनकाल में। ये दूसरे याज्ञवल्क्य हैं। इन्हां ेने धर्मशास्त्र की रचना की जिसे 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' कहते हैं। स्मृति उस ग्रन्थ को कहा जाता है जिसमें आचार-व्यवहार, नियम-कानून

आदि की व्यवस्था दी जाती है। आजकल जिसे कानून कहते हैं उसे प्राचीन काल में धर्मशास्त्र कहा जाता था। इस ग्रन्थ को 'याज्ञवल्क्य संहिता' के नाम से भी जाना जाता है।
'याज्ञवल्क्य-स्मृति' में एक हजार बारह श्लोक हैं जो तीन अध्यायों में विभक्त हैं। इसमें मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक विषय में नियम बनाये गये हैं। इस पुस्तक का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। इस पर अनेक टीकाएँ बनी हैं जिनमें 'मिताक्षरा' तथा 'दायभाग' विशेष प्रसिद्ध हैं। हिन्दू कानून के लिए यह पुस्तक आज भी प्रामाणिक मानी जाती है। पूरे भारत में मिताक्षरा के अनुसार विचार किया जाता है जबकि बंगाल में दायभाग के अनुसार।
ऋषि याज्ञवल्क्य ने शास्त्रार्थ में भी अनेक विद्वानों को हराया था। इन्होंने हमारे समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ की रचना की थी जो आज भी मान्य है। याज्ञवल्क्य ने भारतीय संस्कृति को अमर बनाने की सफल चेष्टा की। संन्यास लेते समय उन्होंने अपनी पत्नी मैत्रेयी को जो उपदेश दिया वह सम्पूर्ण उपनिषदों का निचोड़ है।

पारिभाषिक शब्दावली

शैवमत - शिव की उपासना करने वालों का मत

वैष्णवमत - विष्णु की उपासना करने वालों का मत

अभ्यास प्रश्न

1. महर्षि अगस्त्य ने दक्षिण भारत में कौन से सामाजिक कार्य किए ?
2. महाभाष्य की रचना किसने और कहाँ की थी ?
3. लुप्त महाभाष्य की खोज किसने करायी ?
4. ऋषि याज्ञवल्क्य ने किस ग्रन्थ की रचना की थी ?
5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

;पद्ध .... देश के राजा अगस्त्य को देवता की तरह पूजते थे ।

;पपद्ध कम्बोडिया में अगस्त्य ने .... नामक शिवलिंग की बहुत काल तक पूजा की थी ।

;पपपद्ध महर्षि पत॰जलि पाटलिपुत्र के राजा .... के समकालीन थे ।

;पअद्ध इन्होंने पाणिनि के .... की टीका भी लिखी ।

6. पता कीजिए -

;पद्ध शिलालेख किसे कहते हैं ? क्या आपके आस-पास भी कोई शिलालेख उपलब्ध है ? देखिए उस पर क्या लिखा है ?

;पपद्ध इनके बारे में अपने शिक्षक से पूछिए -

उपनिषद, भाष्य, शास्त्रार्थ

पाठ - 3

G7HQ5N

भरत

यह तो सभी जानते हैं कि राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों महाराज दशरथ के पुत्र थे। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। भरत कैकेयी के पुत्र थे। कैकेयी के कहने पर रामचन्द्र वन भेजे गए। रामचन्द्र के वन जाने के पश्चात् दशरथ की मृत्यु हो गयी। उसी समय भरत बुलाए गए। भरत उस समय अपने नाना के यहाँ थे।

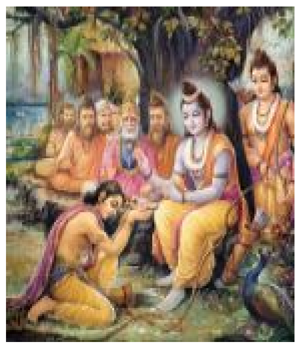

चित्रकूट में भरत

भरत उन लोगों में नहीं थे जो तनिक बात से विचलित हो जाते हैं किन्तु जब उन्होंने सुना कि राम को वन भेजने में मेरी माता का हाथ है तब उनका कलेजा तिलमिला उठा। उन्होंने यह सोचा कि लोग सोचेंगे कि सिंहासन के लालच में भरत भी इनमें मिले रहे होंगे, यद्यपि उनकी यह शंका निर्मूल थी।

दशरथ के अन्तिम संस्कार से संबंधित कार्य होने के बाद लोगों ने उनसे अनुरोध किया कि राजा दशरथ की प्राण त्यागते समय यही आज्ञा थी कि आप अयोध्या के राजा बनें। इसलिए राज-काज सँभालिए और प्रजा का इस प्रकार पालन कीजिए कि वे सुखी हो। मुनियों ने, विद्वानों ने, रानियों ने उन्हें समझाया। परन्तु भरत नैतिक दृष्टि से इसे बहुत अनुचित समझते थे। पुराने नियमों के अनुसार सिंहासन का अधिकार सबसे बड़े पुत्र का होता है। राम सबसे बड़े थे। उन्हें वन में भेजकर दूसरा उनका सिंहासन हड़प ले, यह कैसे हो सकता था? सब लोगों ने यह भी समझाया कि यह तो पिता की आज्ञा है, इसका पालन

करना चाहिए। ऐसी अवस्था में सिंहासन पर बैठना अन्याय नहीं समझना चाहिए किन्तु भरत ने उन लोगों की बातें नहीं मानीं।

बड़े अनुनय-विनय के साथ उन्होंने लोगों से प्रार्थना की कि मुझे राम से भेंट करने की आज्ञा दी जाय और उन लोगों से आज्ञा प्राप्त कर वे रामचन्द्र से भेंट करने वन में गए।

अनेक वनों में घूमते, लोगों से पूछते, नदियों को पार करते वे उस पहाड़ पर पहुँचे जहाँ रामचन्द्र जी थे। राम को जब यह समाचार मिला तब सब कुछ छोड़कर वे सामने पहुँचे, भरत उनके चरणों में गिर गए। भरत के साथ और सब लोग भी थे, उनकी माताएँ भी थीं। भरत ने जिस-जिस प्रकार राम से विनती की, सारा दोष अपने सिर पर मढ़कर जिस ढंग से क्षमा-याचना की वह ऐसा उदाहरण है जिसकी तुलना का दूसरा उदाहरण संसार में नहीं मिलता। राम ने कहा, पिताजी की आज्ञा से तुम राज्य पर शासन करो। भरत ने राज्य को स्वीकार नहीं किया और कहा, आपका राज्य है, नियम से, विधान से आपको मिलना चाहिए, मेरा कोई अधिकार नहीं। तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस' में इसका बहुत मार्मिक वर्णन किया है।

भरत की अनुनय-विनय के साथ लोगों ने भी रामचन्द्र को बहुत समझाया, किन्तु वे विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा कि मुझे तो जितने वर्षों के लिए आज्ञा मिली है उतने वर्ष रहना ही है। उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं हो सकती। अन्त में जब राम किसी प्रकार नहीं माने तब भरत ने यह आज्ञा माँगी कि आपके नाम पर राज्य करूँगा, आपकी खड़ाऊँ सिंहासन पर बैठेंगी। राज्य आपका ही रहेगा, मैं आपका प्रतिनिधि ही रहूँगा।

भरत इसी रूप में अयोध्या लौट आये। वहाँ उन्होंने सिंहासन पर राम की खड़ाऊँ रखीं और अपना रहन-सहन तपस्वी के समान रखकर चौदह वर्षों तक राज-काज सँभाला। इतने दिनों तक उन्होंने बड़े विवेक से, न्याय से और धर्म से राज्य किया।

अभ्यास प्रश्न-

1. भरत कौन थे ? पिता की मृत्यु के समय वे कहाँ थे ?
2. भरत ने अयोध्या के राज्य को क्यों ठुकरा दिया ?
3. भरत ने राज्य को किस शर्त पर स्वीकार किया ?
4. भरत के चरित्र के अनुकरणीय गुणों को लिखिए।

पाठ - 4

चाणक्य

मित्र इस कुश को खोदकर उसमें मट्ठा क्यांे डाल रहे हो? 'इसका काँटा मेरे पैर में घुस गया। मैंने काँटा तो निकाल लिया, किन्तु यह फिर किसी के पैर में न चुभे इसलिए इसे जड़ से नष्ट करना चाहिए।' - यह वार्तालाप चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य के बीच का है

भारतीय इतिहास और राजनीति में चाणक्य का विशिष्ट स्थान है। शासन के विविध पहलुओं का जैसा सारगर्भित विवेचन उनके ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में है वैसा सम्भवतः विश्व के प्राचीन और

आधुनिक किसी भी राजनीतिशास्त्र के विचारक ने नहीं किया है। अतः चाणक्य की गिनती विश्व के राजनीति शास्त्र के महानतम चिन्तकों में की जाती है।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य

चन्द्रगुप्त के मौर्य साम्राज्य की स्थापना के साथ चाणक्य का नाम जुड़ा है। चाणक्य की सहायता, परामर्श एवं राजनीतिक कूटनीति से चन्द्रगुप्त अपने साम्राज्य का विस्तार करने में सफल हुआ। चाणक्य का पूरा नाम 'विष्णु गुप्त चाणक्य' था। उन्हें कौटिल्य के नाम से भी जाना जाता है। चाणक्य तक्षशिला के एक ब्राह्मण के पुत्र थे। बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु हो जाने पर चाणक्य का पालन-पोषण उनकी माता ने किया। तक्षशिला में रहकर उन्हांेने ज्ञानार्जन के साथ-साथ दर्शन का भी अध्ययन किया। चाणक्य परम विद्वान थे परन्तु बहुत क्रोधी एवं उग्र स्वभाव के थे।

युवा होने पर चाणक्य जीविकोपार्जन के लिये मगध साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र पहुँचे। वहाँ मगध के नन्दवंशीय शासक घनानन्द से उनकी भेंट हुई। सम्राट ने चाणक्य को

पाटलिपुत्र की दानशाला का प्रबन्धक नियुक्त किया। कटु और उग्र स्वभाव होने के कारण चाणक्य को वहाँ से पदच्युत कर दिया गया। उन्होंने इसे अपना अपमान समझा और सम्राट घनानन्द तथा नन्द वंश के विनाश करने की प्रतिज्ञा ली। वह सदैव इस खोज में रहते कि प्रतिज्ञा कैसे पूरी करें। उसी समय उनकी भेंट चन्द्रगुप्त से हुई।

चन्द्रगुप्त मगध राज्य में राज्याधिकारी और सेनानायक था। वह बहुत महत्वाकांक्षी था। वह मगद्द साम्राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की भेंट रास्ते में हुई। कुश में मठ्ठा डाल रहे चाणक्य को देखकर चन्द्रगुप्त उनके दृढ़ निश्चय से प्रभावित हुए और उन्होंने चाणक्य को अपना सहयोगी बना लिया। इस मित्रता ने भारतीय इतिहास को एक नवीन दिशा की ओर मोड़ दिया। चन्द्रगुप्त में बल था और चाणक्य में बुद्धि। बल और बुद्धि का यह संयोग भारतीय इतिहास में युग परिवर्तन की घटना सिद्ध हुआ।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने मिलकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। घनानन्द की प्रबल सैन्य शक्ति के कारण वे पराजित हुए। साम्राज्य की शक्ति सदैव केन्द्र में स्थित रहती है और सीमान्त क्षेत्र में क्षीण। चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने अपनी रणनीति में परिवर्तन करके यह निर्णय लिया कि पहले मगध राज्य के सीमान्त क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की जाय तत्पश्चात् मगध राज्य पर आक्रमण करना उचित होगा।

इस नवीन योजना के अनुसार चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने पंजाब पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। इसके पश्चात चन्द्रगुप्त एक विशाल सेना लेकर पाटलिपुत्र पहुँचा। इस युद्ध में घनानन्द मारा गया। चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की सहायता से मगध पर अधिकार प्राप्त कर लिया। चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का विधिवत राज्याभिषेक कर 321 ई.पू. में उसे मगध का सम्राट घोषित कर दिया। चाणक्य की बुद्धिमत्ता और कूटनीति के कारण चन्द्रगुप्त ने उन्हें अपना प्रधानमंत्री और प्रमुख परामर्शदाता नियुक्त कर लिया। चाणक्य ने जीवन के अन्तिम समय तक मौर्य साम्राज्य की सेवा की।

चाणक्य ने राजतंत्र को एक सर्वाधिक उपयोगी संस्था माना है। उनके अनुसार राजा को धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, कृतज्ञ, बलशाली, वृद्धों का सम्मान करने वाला, उत्साही, विनयशील, विवेकी, निर्भीक, न्यायप्रिय, मृदुभाषी तथा कार्य निपुण होना चाहिए। उसे काम-क्रोध, मद-मोह, अहंकार ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्गुणों से दूर रहना चाहिए। इस प्रकार राजा में न केवल राजा के ही गुण वरन् श्रेष्ठ व्यक्तियों के सभी गुण होने चाहिए।

चाणक्य के अनुसार राज्य का यह कर्तव्य है कि आकस्मिक और प्राकृतिक आपदाओं से नागरिक की रक्षा करे। राज्य को अपंग, शक्तिहीन, वृद्ध, रोगी और दीन-दुखियों का पालन-पोषण करना चाहिए। राज्य को शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। राज्य का यह कार्य है कि साहूकार, व्यापारी, जादूगर, शिल्पी, नट, शासकीय अधिकारी और कर्मचारी आदि के

शोषण-उत्पीड़न से प्रजा की भली-भाँति रक्षा करे। व्यापारी अनुपयुक्त दर से क्रय-विक्रय न कर सकें, इसके लिये राज्य को चाहिये कि वे नियम निर्धारित करे।

राज्य के इन कार्यांे से विदित होता है, कि चाणक्य ने आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना कर ली थी। उन्हांेने प्रजाहित को राज्य का लक्ष्य मान लिया था। वे स्वयं वर्षा न होने के कारण अकाल के समय सैकड़ों साधुओं को नित्य भोजन कराते थे।

चाणक्य एक व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने नीति पर भी एक पुस्तक लिखी है। उसमें उनके ऐसे विचार हैं, जिनसे पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य के निर्माता के रूप में वे सफल रहे। उन्होंने राजतंत्र के समर्थक होते हुए भी, निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन का विरोध किया।

चाणक्य आज भी आधुनिक राजनीतिज्ञ, विचारकों, चिन्तकों में अग्रणी माने जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1. चाणक्य का पूरा नाम क्या था ? उन्हें किन नामों से जाना जाता है ?

2. नन्दवंशीय शासक घनानन्द ने चाणक्य को किस पद पर नियुक्त किया ?

3. चाणक्य की नयी रणनीति के अनुसार चन्द्रगुप्त के मगध पर आक्रमण करने का क्या परिणाम हुआ?

4. चाणक्य के अनुसार राजा में कौन-कौन से विशिष्ट गुण होने चाहिए ?

5. दिये गये वाक्यों में से सही उत्तर छाँटिए -

(क) चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य की बुद्धिमत्ता और कूटनीति के कारण -

Û चाणक्य को अपना परामर्शदाता नियुक्त किया।

Û चाणक्य को अपना अमात्य (मंत्री) नियुक्त किया।

Û चाणक्य को अपना ‘महामात्य’ (प्रधानमंत्री) नियुक्त किया।

(ख) चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक -

Û 298 ई0पू0किया।

Û 312 ई0पू0किया।

Û 321 ई0पू0किया।

योग्यता विस्तार -

भारत के मानचित्र में बिहार राज्य में मगध, पाटलिपुत्र (पटना) नालन्दा और तक्षशिला ढूँढिए। जानकारी प्राप्त कीजिए कि नालन्दा और तक्षशिला क्यों प्रसिद्ध हैं ?

पाठ - 5

G81H8Y

समुद्रगुप्त

किसी भी देश की उन्नति और समृद्धि के लिए राजनैतिक स्थिरता तथा आन्तरिक सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में साहित्य, संस्कृति, उद्योग तथा ललित कलाओं का ह्रास होने लगता है। मौर्य साम्राज्य के बाद भारत के भिन्न-भिन्न भागों पर एक लम्बे समय तक अनेक छोटे-बड़े राजाओं का आधिपत्य था। सभी शासकों के स्वार्थ अलग थे और उनकी कामनाएँ अलग थीं। उस समय ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान और पारस्परिक कलह का बोलबाला था। ऐसे ही समय में चन्द्रगुप्त प्रथम का पुत्र समुद्रगुप्त मगध का सम्राट बना। समुद्रगुप्त की माता का नाम कुमार देवी था। यह अत्यन्त उदार और करुण स्वभाव की महिला थीं।

इस काल का इतिहास जानने के मुख्य स्रोत स्तम्भ हैं। प्रयाग स्तम्भ के अनुसार समुद्र्रगुप्त बाल्यावस्था से ही विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न था। वह साहस और वीरता की प्रतिमूर्ति था। यही कारण था कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने जीवनकाल में ही उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था।

समुद्रगुप्त का बाल्यकाल माता कुमार देवी जैसी उदार एवं कर्तव्यनिष्ठ महिला के संरक्षण में व्यतीत हुआ। सत्यवादिता, न्यायप्रियता जनहितकामना, राष्ट्रप्रेम, साहस, परोपकार तथा सुख और दुःख को समान भाव से स्वीकार करने की शिक्षा उसे बाल्यावस्था से ही माता से मिली थी जो आगे चलकर उसके जीवन का अंग बन गयी। बचपन से ही समुद्रगुप्त की यह अभिलाषा थी कि समस्त भारतभूमि को एकता के सूत्र में बाँधकर उसे एक सुदृढ़ राष्ट्र का स्वरूप प्रदान किया जाए। यही कारण है कि समुद्रगुप्त ने भारत की शक्ति को खण्डित करने वाली देशी व विदेशी ताकतों को नष्ट करने का संकल्प लिया।

भारत की राष्ट्रीय एकता की स्थापना हेतु समुद्रगुप्त ने विजय यात्रा प्रारम्भ की। प्रयाग के 'अशोक स्तम्भ' में समुद्रगुप्त के विजय अभियानों का विस्तृत विवरण मिलता है। सबसे पहले उसने उत्तर भारत के राजाओं को परास्त किया और उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में मिला लिया। उसके साहस और पौरुष की चर्चा होने लगी। अपनी सेना का संचालन वह स्वयं करता था और एक सैनिक की भाँति युद्ध में भाग लेता था। धीरे-धीरे उसने पूर्व में

बंगाल तक अपना राज्य फैलाया। पूर्वी तट के द्वीपों पर आक्रमण के लिए उसने नौसेना का गठन किया।

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए दक्षिण राज्यों को एक केन्द्रीय शासन के अधीन लाना आवश्यक था। प्रयाग स्तम्भ में इसका उल्लेख है। इस यात्रा के लिए उसे अत्यन्त भयावह और बीहड़ जंगलों को पार करना पड़ा। कहीं पहाड़ लाँघने पड़े, कहीं नदियों पर पुल बाँधने पड़े और कहीं हाथियों से ही पुल का काम लेना पड़ा। समुद्रगुप्त ने मध्य प्रदेश से प्रवेश कर दक्षिण कौशल की राजनगरी ''श्रीपु'' पर घेरा डाला। इसके बाद उसने बीहड़ जंगली प्रदेश ''महाकान्तार'' पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। पल्लव राजा को छोड़कर सभी ने उसके सामने आत्मसमर्पण कर दिया। पल्लव राजा विष्णुगोप की हाथियों की सेना अत्यन्त शक्तिशाली थी, लेकिन समुद्रगुप्त के आक्रमण की आँधी को वह भी नहीं रोक सकी और अन्त में उसे भी आत्मसमर्पण करना पड़ा। सीमान्त प्रदेश के पाँच तथा नौ अन्य गणराज्यों ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके पश्चात आर्यावर्त, विंध्य क्षेत्र, मध्य भारत और कलिंग से लगे जंगली प्रदेशों के 'अठारह अटवी' शासकों को भी समुद्रगुप्त ने परास्त किया। कहते हैं कि समुद्रगुप्त ने इन अभियानों में तीन वर्ष में तीन हजार मील की यात्रा की थी।

समुद्रगुप्त अत्यन्त दूरदर्शी शासक था। वह जानता था कि एक केन्द्र से सुदूर दक्षिण भारत के राज्यों की व्यवस्था करना कठिन होगा, इसलिए दक्षिण भारत के शासकों को परास्त करने के पश्चात् उसने अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया और उनका राज्य अनुग्रहपूर्वक उन्हीं को वापस कर दिया। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण भारत पर समुद्रगुप्त का अधिकार हो गया।

लगभग समस्त भारत पर विजय पताका फहराने के पश्चात् समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ किया। उस समय हिन्दू राजाओं में यह प्रथा थी कि जब कोई सम्राट दिग्विजय करता था तभी वह यह यज्ञ किया करता था। इस यज्ञ में एक घोड़ा छोड़ा जाता था और सेना उसके पीछे चलती थी। यदि कोई घोड़ा पकड़ लेता था तो राजा उससे युद्ध करता था अन्यथा जब घोड़ा विभिन्न राज्यों की सीमाओं से होकर वापस आता था तब यह यज्ञ पूर्ण माना जाता था और राजा दिग्विजयी समझा जाता था। समुद्रगुप्त ने यह यज्ञ बड़ी धूमधाम से किया। इस अवसर पर दान देने के लिए उसने सोने की मोहरें विशेष रूप से ढलवायीं। इन पर अश्वमेध के घोड़े की आकृति तथा ''अश्वमेध पराक्रमः'' शब्द अंकित था। इस यज्ञ के अवसर पर समुद्रगुप्त को ''महाराजाधिराज'' घोषित किया गया। इस यज्ञ का मुख्य लक्ष्य समस्त भारत पर एकछत्र राज्य की स्थापना था।

समुद्रगुप्त की शासन व्यवस्था इतनी सुदृढ़ थी कि उसके लगभग पचास (50) वर्ष के शासनकाल में किसी भी क्षेत्र में न अशान्ति हुई और न किसी ने साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने का साहस किया। समुद्रगुप्त शासन संचालन में सद्व्यवहार, न्याय, समता और लोक

कल्याण पर अधिक ध्यान देता था। उस समय खेती और व्यापार उन्नत दशा में थे। नहरों और मार्गों का जाल-सा बिछा था। भारत-भूमि धन-धान्य से परिपूर्ण थी।

गुप्त वंश के सभी राज्य हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। वे सब परम वैष्णव थे। समुद्रगुप्त अन्य धर्मों के विकास तथा उत्थान के लिए समान अवसर तथा सहायता प्रदान करता था। समुद्रगुप्त ने लंका के राजा को गया में "महाबोधि संघराम" नामक विहार बनवाने की आज्ञा दी थी। इस प्रकार उसके शासनकाल में पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। समुद्रगुप्त की उदारता की प्रशंसा बौद्ध भिक्षु बसुबन्धु ने भी की है।

समुद्रगुप्त न केवल शस्त्रों में ही कुशल था वरन् शास्त्रों में भी उसका लगाव था। साहित्य और संगीत में उसकी बड़ी रुचि थी। वह स्वयं एक अच्छा लेखक और कवि था। वह साहित्यकारों और कवियों का आश्रयदाता था। उसका मन्त्री हरिषेण भी उच्चकोटि का कवि था। कहते हैं, बौद्ध विद्वान बसुबन्धु को भी समुद्रगुप्त का आश्रय प्राप्त था। समुद्रगुप्त वीणा बजाने में बड़ा निपुण था। प्रयाग के स्तम्भ तथा सिक्कों पर अंकित वीणा से इसकी पुष्टि होती है। यह समुद्रगुप्त की विलक्षण प्रतिभा ही थी कि वह "व्याध पराक्रमः" की उपाधि से सुशोभित था।

समुद्रगुप्त ने लगभग पचास वर्ष तक सुख और शान्ति से शासन चलाया। प्रयाग स्तम्भ से स्पष्ट है कि वह एक अखिल भारतीय साम्राज्य की कल्पना से प्रेरित था। अपनी इसी अदम्य-इच्छा-शक्ति और अपार पौरुष के बल पर वह एक प्रबल केन्द्रीय राजसत्ता की स्थापना कर सका। सेनापति और सम्राट के रूप में तेजस्वी समुद्रगुप्त में ऐसे भी अनेक गुण थे जो शान्तिपूर्ण जीवन के लिए अधिक अनुकूल थे। प्राप्त सिक्कों और अभिलेखों से हमारे समक्ष एक ऐसे वज्रदेह, शक्तिशाली सम्राट की मूर्ति खड़ी होती है जिसने देश को धन-धान्य से परिपूर्ण किया। तत्कालीन बौद्धिक एवं सांस्कृतिक सम्पन्नता ने उस नवयुग का सूत्रपात किया जिसमें पाँच सदियों से छिन्न-भिन्न हुई राजनीतिक राष्ट्रीय एकता पुनः स्थापित हुई। इसे भारत का स्वर्णयुग भी कहा जाता है।

अभ्यास-प्रश्न

1. समुद्रगुप्त कौन था ?
2. समुद्रगुप्त की विजय यात्रा का मुख्य उद्देश्य क्या था ?
3. समुद्रगुप्त की विजय का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. अश्वमेध यज्ञ किसे कहते हैं ? इस अवसर पर समुद्रगुप्त को क्या उपाधि दी गयी थी ?
5. समुद्रगुप्त की शासन व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. हरिषेण कौन था ?

पाठ - 6

G8ADAL

महाकवि कालिदास

क्या आप कभी यह कल्पना कर सकते हैं कि बादल भी किसी का सन्देश दूसरे तक पहुँचा सकते हैं? संस्कृत साहित्य में एक ऐसे महाकवि हुए हैं, जिन्होंने मेघ के द्वारा सन्देश भेजने की मनोहारी कल्पना की। वे हैं संस्कृत के महान कवि कालिदास।

कालिदास कौन थे ? उनके माता-पिता का क्या नाम था ? उनका जन्म कहाँ हुआ था ? इस बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। उन्हांेने अपने जीवन के विषय में कहीं कुछ नहीं लिखा है। अतः उनके बारे में जो कुछ भी कहा जाता है वह अनुमान पर आधारित है। कहा जाता है कि पत्नी विद्योत्तमा की प्रेरणा से उन्होंने माँ काली देवी की उपासना की जिसके फलस्वरूप उन्हें कविता करने की शक्ति प्राप्त हुई और वह कालिदास कहलाए।

कविता करने की शक्ति प्राप्त हो जाने के बाद जब वे घर लौटे तब अपनी पत्नी से कहा - "अनावृतं कपाटं द्वारं देहि" (अर्थात दरवाजा खोलो) पत्नी ने कहा "अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः।" (वाणी मंे कुछ विशेषता है) कालिदास ने यह तीन शब्द लेकर तीन काव्य ग्रन्थों की रचना की।

इसे भी जानिये-

'अस्ति' से कुमार सम्भव के प्रथम श्लोक, 'कश्चित्' से मेघदूत के प्रथम श्लोक
और 'वाक्' से रघुवंश के प्रथम श्लोक की रचना की।

महाकवि कालिदास ई0पू0 प्रथम शताब्दी में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राजकवि थे। ये शिव-भक्त थे। उनके ग्रन्थों के मंगल श्लोकों से इस बात की पुष्टि होती है। मेघदूत और रघुवंश के वर्णनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने भारतवर्ष की विस्तृत यात्रा की थी। इसी कारण उनके भौगोलिक वर्णन सत्य, स्वाभाविक और मनोरम हुए।

रचनाएँ-

महाकाव्य - रघुवंश, कुमारसम्भव

नाटक - अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, मालविकाग्निमित्र

खण्डकाव्य या गीतकाव्य - ऋतुसंहार, मेघदूत।

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, शास्त्रीय संगीत, ज्योतिष, व्याकरण,एवं छन्दशास्त्र आदि का गहन अध्ययन किया था।

महाकवि कालिदास अपनी रचनाओं के कारण सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध हैं। उनके कवि हृदय में भारतीय संस्कृति के प्रति लगाव था। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला की विदा बेला पर महर्षि कण्व द्वारा दिया गया उपदेश आज भी भारतीय समाज के लिए एक सन्देश है -

अपने गुरुजनों की सेवा करना, क्रोध के आवेश में प्रतिकूल आचरण न करना, अपने आश्रितों पर उदार रहना, अपने ऐश्वर्य पर अभिमान न करना, इस प्रकार आचरण करने वाली स्त्रियाँ गृहलक्ष्मी के पद को प्राप्त करती हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तल

महाकवि कालिदास का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। वे प्रकृति को सजीव और मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार मानव के समान वे भी सुख-दुःख का अनुभव करती है। शकुन्तला की विदाई बेला पर आश्रम के पशु-पक्षी भी व्याकुल हो जाते हैं -

हिरणी कोमल कुश खाना छोड़ देती है, मोर नाचना बन्द कर देते हैं और लताएँ अपने पीले पत्ते गिराकर मानों अपनी प्रिय सखी के वियोग में अश्रुपात (आँसू गिराने) करने लगती हैं।

अभिज्ञानशाकुन्तल

कालिदास अपनी उपमाओं के लिए भी संसार में प्रसिद्ध हैं। उनकी उपमाएँ अत्यन्त मनोरम हैं और सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक में कालिदास ने शकुन्तला की विदाई बेला पर प्रकृति द्वारा शकुन्तला को दी गयी भेंट का मनोहारी चित्रण किया है।

''किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने योग्य आलक्तक (आलता महावर) प्रकट किया। अन्य वृक्षों ने कलाई तक उठे हुए सुन्दर किसलयों (कोपलों) की प्रतिस्पर्धा करने वाले, वन देवता के करतलों (हथेलियों) से आभूषण दिये।''

कालिदास अपने नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल के कारण भारत में ही नहीं विश्व मंे सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने जाते हैं। भारतीय समालोचकों ने कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक सभी नाटकों में सर्वश्रेष्ठ बताया है-

''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।''

संसार की सभी भाषाओं में कालिदास की इस रचना का अनुवाद हुआ है। जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान गेटे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' नाटक को पढ़कर भाव विभोर हो उठे और कहा - यदि स्वर्गलोक और मर्त्यलोक को एक ही स्थान पर देखना हो तो मेरे मँुह से सहसा एक ही नाम निकल पड़ता है शकुन्तला....

महाकवि कालिदास को भारत का 'शेक्सपियर' कहा जाता है। कालिदास और संस्कृत साहित्य का अटूट सम्बन्ध है। जिस प्रकार रामायण और महाभारत संस्कृत कवियों के आधार हैं उसी प्रकार कालिदास के काव्य और नाटक आज भी कवियों के लिए अनुकरणीय बने हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1. सोचिए और बताइए -

(क) महाकवि कालिदास की पत्नी का क्या नाम था ?

(ख) महाकवि कालिदास को कवित्व शक्ति कैसे प्राप्त हुई ?

(ग) महाकवि कालिदास के नाटकों के नाम बताइए।

(घ) महाकवि कालिदास की किस रचना को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है और क्यों ?

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) .... को विश्व का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है।

(ख) महाकवि कालिदास ने .... और.............. महाकाव्यों की रचना की।

(ग) महाकवि कालिदास का.................... घनिष्ठ सम्बन्ध था।

(घ) महाकवि कालिदास को भारत का .... कहा जाता है।

3. सही (√) और गलत (ग्) का निशान लगाइए -

(क) महाकवि कालिदास को विश्व में कोई नहीं जानता।

(ख) ऋतुसंहार महाकाव्य है।

(ग) अभिज्ञानशाकुन्तल विश्व का सर्वश्रेष्ठ नाटक है।

(घ) महाकवि कालिदास हिन्दी के महाकवि थे।

योग्यता विस्तार -

'अभिज्ञानशाकुन्तल' कालिदास का संसार प्रसिद्ध नाटक है। इसका मंचन विभिन्न कलाकारों द्वारा समय-समय पर किया जाता रहा है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का हिन्दी रूपान्तर पुस्तकालय से प्राप्त करें अपनी पसन्द के अंशो का मंचन कीजिए।

Û कालिदास की उपमाएँ संसार प्रसिद्ध हैं। अपने संस्कृत शिक्षक से उनकी उपमाओं के विषय में जानकारी कीजिए और उन्हें लिखिए।

Û कालिदास के बारे में जनश्रुतियाँ हैं कि वे प्रारम्भ में अत्यन्त अल्पबुद्धि के थे। इस बात की पुष्टि के लिए कुछ घटनाएँ भी सुनाई जाती हैं अपने शिक्षक से उनके विषय में पता कीजिए।

पाठ - 7

हर्षवर्धन

ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की बात है। प्रयाग में बहुत बड़े दान-समारोह का आयोजन किया गया था। सम्पूर्ण भारत से लोग दान-दक्षिणा पाने के लिए एकत्र थे। राजा दान-दक्षिणा की सभी वस्तुओं को यहाँ तक कि राजकोष की सम्पूर्ण सम्पत्ति और अपने शरीर के समस्त आभूषणों को जब दान दे चुका तो एक व्यक्ति ऐसा रह गया जिसे देने के लिए उसके पास कुछ शेष नहीं था। दानार्थी बोला- राजन्! आपके पास मुझे देने के लिए कुछ नहीं बचा है। मैं वापस जाता हूँ। राजा ने कहा- ठहरो, अभी मेरे वस्त्र शेष हैं जिन्हें मैंने दान नहीं दिया है और पास खड़ी बहन से अपना तन ढकने के लिए दूसरा वस्त्र माँग कर उसने अपना उत्तरीय उतार कर उस याचक को दे दिया। गद्गद् स्वर से जनसमूह ने हर्ष ध्वनि की- राजा चिरंजीव हों उनका यश अमर रहे आदि नारे लगाए।

जन-जन को अपनी दानशीलता से मुग्ध करने वाला यह राजा और कोई नहीं, दानवीर हर्षवर्धन था।

590 ई0 के ज्येष्ठ माह में रानी यशोमती के गर्भ से हर्ष का जन्म हुआ था। उनके पिता प्रभाकर वर्धन थानेश्वर के योग्य एवं प्रतापी शासक थे, जिन्होंने भारत पर आक्रमण करने वाले हूणों का बड़ी कुशलता से दमन किया था। पिता की मृत्यु के बाद हर्षवर्धन के बड़े भाई, राज्यवर्धन गद्दी पर बैठे। इसी बीच मालवा के राजा देवगुप्त ने हर्ष की छोटी बहन राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा की हत्या कर दी। ग्रहवर्मा कन्नौज का राजा था। राज्यश्री को कैद करके कारागार में डाल दिया गया था। इस अपमान का बदला लेने के लिए राजवर्धन ने मालवा पर चढ़ाई कर दी और युद्ध में विजयी हुआ किन्तु लौटते समय बंगाल के राजा

शशंाक द्वारा मार डाला गया। हर्ष अभी सोलह वर्ष का नहीं हुआ था। भाई राज्यवर्धन की मृत्यु पर अत्यधिक दुःखी हुआ और राजपाट छोड़ने को तैयार हो गया। इस पर मन्त्रियों ने उसे बहुत समझाया और राजा बनने की सविनय प्रार्थना की, तब शीलादित्य उपनाम ग्रहण करके वर्ष 606 ई0 में वह कन्नौज के सिंहासन पर बैठा।

अब तरुण हर्ष के सामने दो काम थे। एक तो अपनी बहन को ढूँढ़कर लाना, दूसरे अपने भाई के हत्यारों को दण्ड देना। इसके लिए उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वह इस दोहरी स्थिति से अत्यधिक उद्विग्न हो गया था। इसी बीच हर्ष के कर्मचारियों ने उसे दिग्विजय के लिए प्रेरित किया। हर्ष ने पहले शशांक को परास्त किया, उसके बाद बहन राज्यश्री का पता लगाया, जो पति की मृत्यु से दुखी होकर जंगल में चिता में जलने जा रही थी। अपनी बहन को वह ले आया और उसे जीवन पर्यन्त अपने पास रखा। इसके बाद हर्ष ने उत्तरी भारत के विभिन्न राज्यों को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया और अपने राज्य में पूर्ण शान्ति स्थापित की। दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त करने में वह असफल रहा। चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्विितीय नामक राजा ने उसे नर्मदा नदी से आगे नहीं बढ़ने दिया। हर्ष एक कुशल सेनापति एवं शूरवीर योद्धा था। नेतृत्व करने की उसमें अपूर्व क्षमता थी। जिसके बल पर उसने 30 वर्ष से अधिक समय तक शान्तिपूर्वक राज्य किया।

हर्ष एक प्रजावत्सल राजा था। प्रजा के हित के लिए उसने अनेक महान कार्य किये। हर्ष के कार्य-कलापों के विषय में विशेष वर्णन चीनी यात्री ह्नेनसांग के लेखों में मिलता है जो 630 ई0 में भारत में बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों को देखने तथा बौद्ध धर्म के पवित्र ग्रन्थों को लेने आया था।

हर्ष के समय में भारत को अपने इतिहास के एक अत्यन्त भव्य युग को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हर्ष धार्मिक विषयों में उदार और विद्या प्रेमी था। प्रयाग की सभा में वह सभी वर्णों, जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के लोगों को निष्पक्ष होकर दान देता था। बुद्ध की मूर्ति के साथ-साथ सूर्य और शिव की मूर्तियों का भी सम्मान करता था। वह इतना बड़ा दानी था कि युद्ध सामग्री के अतिरिक्त सब कुछ दान देता था। उसने नगरों तथा गाँवों के राज-मार्गों पर धर्मशालाएँ बनवायीं जिनमें भोजन और चिकित्सा का प्रबन्ध था।

हर्ष स्वयं विद्वान होने के साथ-साथ विद्वानों का आश्रयदाता भी था। बाणभट्ट हर्ष के दरबारी कवि थे। बाणभट्ट ने हर्ष के काव्य कौशल, ज्ञान और उनकी मौलिकता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। हर्ष ने संस्कृत भाषा में ‘‘रत्नावली’’, ‘‘नागानन्द’’, और ‘‘प्रियदर्शिका’’ नामक नाटक लिखे। साथ ही एक व्याकरण ग्रंथ की भी रचना की। प्राचीन भारत की साहित्यिक समालोचना में हर्ष को उच्च श्रेणी का कवि माना जाता है। उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य निबन्ध हैं जिनकी रचना का श्रेय हर्ष को ही दिया जाता है।

हर्ष सरकारी जमीन की आय का एक चतुर्थांश विद्वानों को पुरस्कृत करने मंे और दूसरा चतुर्थांश विभिन्न सम्प्रदायों को दान देने में खर्च करता था। विद्वान कवियों के अतिरिक्त

अच्छे धर्म प्रचारक भी उसकी राजसभा की शोभा बढ़ाते थे। इनमें सागरमति, प्रज्ञारश्मि, सिंहरश्मि और ह्वेनसांग आदि प्रमुख हैं।

हर्ष की नीति अहिंसावादी थी। उसने अपने राज्य में सर्वत्र माँसाहार का निषेध कर दिया था। उसने जीव हिंसा पर रोक लगा दी थी तथा कठोर दण्ड का प्रावधान कर दिया था।

हर्ष के समय में वास्तुकला, शिल्प, गृहनिर्माण के अतिरिक्त विविध कलाओं में भी भारत बहुत उन्नत था। ह्वेनसांग ने उस काल के नाना प्रकार के वस्त्रों का विशेष उल्लेख किया है। नगरों में कन्नौज, प्रयाग, मथुरा, थानेश्वर, हरिद्वार, रामपुर, पीलीभीत, अयोध्या, कौशाम्बी, वाराणसी, रंगपुर आदि विशेष रूप से समृद्ध एवं विकसित थे। ये नगर स्तूपों, विहारों, मन्दिरों, अतिथि भवनों, धर्मशालाओं एवं सब प्रकार की सुख-सुविधाओं से पूर्ण थे।

हर्ष के शासनकाल में भारत का आन्तरिक शासन-सुव्यवस्थित हो गया था जिसके फलस्वरूप विद्या, व्यापार, संस्कृति, कला आदि क्षेत्रों में बहुमुखी विकास हुआ और पड़ोसी देशों में भी इसका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह लोग भारत को विवेक और संस्कृति का केन्द्र मानकर अपनी ज्ञान पिपासा को तृप्त करने के लिए इस पुण्यभूमि की शरण में आए।

हर्ष बहुमुखी प्रतिभा और विलक्षण चरित्र के कारण एक साथ ही राजा, कवि, योद्धा, विद्वान राजसी और साधु स्वभाव के थे।

बौद्ध धर्म का अध्ययन पूरा कर चीन लौटते समय ह्वेनसांग ने कहा था।

‘‘मैं अनेक राजाओं के सम्पर्क में आया किन्तु हर्ष जैसा कोई नहीं। मैंने अनेक देशों में भ्रमण किया है किन्तु भारत जैसा कोई देश नहीं। भारत वास्तव में महान देश है और उसकी महत्ता का मूल है उसकी जनता तथा हर्ष जैसे उसके शासक।’’

अभ्यास

1. हर्षवर्धन किन परिस्थितियों में सिंहासन पर बैठा ?

2. हर्ष के दान से सम्बन्धित किसी घटना का उल्लेख कीजिए।

3. हर्षकालीन भारत का वर्णन कीजिए।

4. ह्वेनसांग ने हर्ष की प्रशंसा में क्या कहा है ?

पाठ - 8

G8T5DH

आदि गुरु शंकराचार्य

नदी की वेगवती धारा में माँ-बेटे घिर गए थे। बेटे ने माँ से कहा- "यदि आप मुझे सन्यास लेने की आज्ञा दें तो मैं बचने की चेष्टा करूँ, अन्यथा यहीं डूब जाऊँगा। उसने अपने हाथ-पैर ढीले छोड़ दिए। पुत्र को डूबता देखकर उसकी माँ ने स्वीकृति दे दी। पुत्र ने स्वयं तथा माँ दोनों को बचा लिया।"

- यह बालक शंकराचार्य थे।

- शं्ाकराचार्य के मन में बचपन से ही संन्यासी बनने की प्रबल इच्छा जाग उठी थी।

- माँ की अनुमति मिलने पर वे संन्यासी बन गए।

शंकराचार्य के बचपन का नाम शं्ाकर था। इनका जन्म दक्षिण भारत के केरल प्रदेश में पूर्णा नदी के तट पर स्थित कालडी ग्राम में आज से लगभग बारह सौ वर्ष पहले हुआ था। इनके पिता का नाम शिवगुरु तथा माता का नाम आर्यम्बा था। इनके पिता बड़े विद्वान थे तथा इनके पितामह भी वेद-शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनका परिवार अपने पांडित्य के लिये विख्यात था।

इनके बारे में ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी - 'आपका पुत्र महान विद्वान, यशस्वी तथा भाग्यशाली होगा' इसका यश पूरे विश्व में फैलेगा और इसका नाम अनन्त काल तक अमर रहेगा'। पिता शिवगुरु यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने पुत्र का नाम शंकर रखा। ये अपने माँ-बाप की इकलौती सन्तान थे। शंकर तीन ही वर्ष के थे कि इनके पिता का देहान्त

हो गया। पिता की मृत्यु के बाद मंाँ आर्यम्बा शं्ाकर को घर पर ही पढ़ाती रही। पंाँचवे वर्ष उपनयन संस्कार हो जाने पर माँ ने इन्हें आगे अध्ययन के लिए गुरु के पास भेज दिया। शंकर कुशाग्र एवं अलौकिक बुद्धि के बालक थे। इनकी स्मरण शक्ति अद्भ्ुत थी। जो बात एक बार पढ़ लेते या सुन लेते उन्हें याद हो जाती थी। इनके गुरु भी इनकी प्रखर मेधा को देखकर आश्चर्यचकित थे। शं्ाकर कुछ ही दिनों में वेदशास्त्रों एवं अन्य द्दर्मग्रन्थों में पारंगत हो गये। शीघ्र ही इनकी गणना प्रथम कोटि के विद्वानों में होने लगी।

शंकर गुरुकुल में सहपाठियों के साथ भिक्षा माँगने जाते थे। वे एक बार कहीं भिक्षा माँगने गये। अत्यन्त विपन्नता के कारण गृहस्वामिनी भिक्षा न दे सकी अतः रोने लगी। शं्ाकर के हृदय पर इस घटना का गहरा प्रभाव पड़ा।

विद्या अध्ययन समाप्त कर शंकर घर वापस लौटे। घर पर वे विद्यार्थियों को पढ़ाते तथा माँ की सेवा करते थे। इनका ज्ञान और यश चारों तरफ फैलने लगा। केरल के राजा ने इन्हें अपने दरबार का राजपुरोहित बनाना चाहा किन्तु इन्होंने बड़ी विनम्रता से अस्वीकार कर दिया। राजा स्वयं शंकर से मिलने आये।

उन्होंने एक हजार अशर्फियाँ इन्हें भेंट कीं और इन्हें तीन स्वरचित नाटक दिखाये। शं्ाकर ने नाटकों की प्रशंसा की किन्तु अशर्फियाँ लेना अस्वीकार कर दिया। शं्ाकर के त्याग एवं गुणग्राहिता के कारण राजा इनके भक्त बन गए।

अपनी माँ से अनुमति लेकर शंकर ने संन्यास ग्रहण कर लिया। माँ ने अनुमति देते समय शंकर से वचन लिया कि वे उनका अन्तिम संस्कार अपने हाथांे से ही करेंगे। यह जानते हुए भी कि संन्यासी यह कार्य नहीं कर सकता उन्होंने माँ को वचन दे दिया। माँ से आज्ञा लेकर शंकर नर्मदा तट पर तप में लीन संन्यासी गोविन्दनाथ के पास पहुँचे। शंकर जिस समय वहाँ पहुँचे गोविन्दनाथ एक गुफा में समाधि लगाये बैठे थे । समाधि टूटने पर शंकर ने उन्हें प्रणाम किया और बोले -‘ मुझे संन्यास की दीक्षा तथा आत्मविद्या का उपदेश दीजिए।’

गोविन्दनाथ ने इनका परिचय पूछा तथा इनकी बातचीत से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने संन्यास की दीक्षा दी और इनका नाम शं्ाकराचार्य रखा। वहाँ कुछ दिन अध्ययन करने के बाद वे गुरु की अनुमति लेकर सत्य की खोज के लिए निकल पड़े। गुरु ने उन्हें पहले काशी जाने का सुझाव दिया।

शंकराचार्य काशी में एक दिन गंगा स्नान के लिए जा रहे थे। मार्ग में एक चांडाल मिला। शं्ाकराचार्य ने उसे मार्ग से हट जाने के लिए कहा। उस चांडाल ने विनम्र भाव से पूछा - ‘ महाराज ! आप चांडाल किसे कहते हैं ? इस शरीर को या आत्मा को ? यदि शरीर को तो वह नश्वर है और जैसा अन्न-जल का आपका शरीर वैसा ही मेरा भी। यदि शरीर के भीतर की आत्मा को, तो वह सबकी एक है, क्योंकि ब्रह्म एक है। शंकराचार्य को उसकी बातों से सत्य का ज्ञान हुआ और उन्होंने उसे धन्यवाद दिया।

काशी में शंकराचार्य का वहाँ के प्रकाण्ड विद्वान मंडन मिश्र से शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ कई दिन तक चला। मंडन मिश्र तथा उनकी पत्नी भारती का बारी-बारी से इनसे शास्त्रार्थ हुआ। पहले श्ंाकराचार्य भारती से हार गए किन्तु पुनः शास्त्रार्थ होने पर वे जीते। मंडन मिश्र तथा उनकी पत्नी शंकराचार्य के शिष्य बन गये।
महान कर्मकाण्डी कुमारिल भट्ट से शास्त्रार्थ करने के लिए वे प्रयागधाम गए। भट्ट बड़े-बड़े विद्वानों को परास्त करने वाले दिग्विजयी विद्वान थे।
संन्यासी शंकराचार्य विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते रहे। वे श्रंृगेरी में थे तभी माता की बीमारी का समाचार मिला। वह तुरन्त माँ के पास पहुँचे। वह इन्हें देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं। कहते हैं कि इन्होंने माँ को भगवान विष्णु का दर्शन कराया और लोगों के विरोध करने पर भी माँ का दाह-संस्कार किया।
शंकराचार्य ने धर्म की स्थापना के लिए सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। उन्होंने भग्न मंदिरों का जीर्णाेद्धार कराया तथा नये मन्दिरों की स्थापना की। लोगों को राष्ट्रीयता के एक सूत्र में पिरोने के लिए उन्होंने भारत के चारों कोनों पर चार धामों(मठों) की स्थापना की। इनके नाम हैं - श्री बदरीनाथ, द्वारिकापुरी, जगन्नाथपुरी तथा श्री रामेश्वरम्। ये चारों धाम आज भी विद्यमान हैं। इनकी शिक्षा का सार है -
"ब्रह्म सत्य है तथा जगत मिथ्या है" इसी मत का इन्होंने प्रचार किया।
शंकराचार्य बड़े ही उज्जवल चरित्र के व्यक्ति थे। वे सच्चे संन्यासी थे तथा उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की। इन्होंने भाष्य, स्तोत्र तथा प्रकरण ग्रन्थ भी लिखे। इनका देहावसान मात्र 32 वर्ष की अवस्था में हो गया। उनका अन्तिम उपदेश था-

हे मानव ! तू स्वयं को पहचान, स्वयं को
पहचानने के बाद तू ईश्वर को पहचान जायेगा।

अभ्यास प्रश्न

1. बालक शंकर के विषय में ज्योतिषियों ने क्या कहा था ?
2. गुरु श्ंाकराचार्य को सत्य का ज्ञान कहाँ और कैसे हुआ ?
3. गुरु श्ंाकराचार्य का अन्तिम उपदेश क्या था ?
4. इन्हें आदि गुरु श्ंाकराचार्य क्यों कहते हैं ?
5. गुरु शंकराचार्य द्वारा कौन से मठों की स्थापना की गई है ?
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

Û इनका परिवार............. के लिए विख्यात था।
Û इनके गुरु भी इनकी............. को देखकर आश्चर्यचकित थे।
Û गुरु शंकराचार्य का देहावसान मात्र.................... वर्ष की अवस्था में हो गया।

पाठ - 9

G931FJ

गोस्वामी तुलसीदास

लगभग चार सौ वर्ष पहले तीर्थ शूकरखेत (आज सोरांे, जिला-एटा, उ0प्र0) में संत नरहरिदास का आश्रम था। वे विद्वान उदार और परम भक्त थे। वे अपने आश्रम में लोगों को बड़े भक्ति-भाव से रामकथा सुनाया करते थे। एक दिन जब नरहरिदास कथा सुना रहे थे, उन्होंने देखा भक्तों की भीड़ में एक बालक तन्मयता से कथा सुन रहा है। बालक की ध्यान-मुद्रा और तेजस्विता देख उन्हें उसके महान आत्मा होने की अनुभूति हुई। उनकी यह अनुभूति बाद में सत्य सिद्ध भी हुई। यह बालक कोई और नहीं तुलसीदास थे। जिन्हांेने अप्रतिम महाकाव्य ‘रामचरित मानस’ की रचना की।

तुलसीदास का जन्म यमुना तट पर स्थित राजापुर (चित्रकूट) में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्मा राम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। तुलसीदास के जन्म स्थान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। जन्म के कुछ ही समय बाद इनके सिर से माँ बाप का साया उठ गया। सन्त नरहरिदास ने अपने आश्रम में इन्हें आश्रय दिया। वहीं इन्होंने रामकथा सुनी। पन्द्रह वर्षों तक अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् तुलसीदास अपने जन्म स्थान राजापुर चले आए। यहीं पर उनका विवाह रत्नावली के साथ हुआ। एक दिन जब तुलसी कहीं बाहर गये हुए थे, रत्नावली अपने भाई के साथ मायके (पिता के घर) चली गयीं। घर लौटने पर तुलसी को जब पता चला, वे उल्टे पाँव ससुराल पहँुच गए। तुलसी को देखकर उनके ससुराली जन स्तब्ध रह गए। रत्नावली भी लज्जा और आवेश से भर उठी। उसने धिक्कारते हुए कहा 'तुम्हें लाज नहीं आती, हाड़- माँस के शरीर से इतना लगाव रखते हो। इतना प्रेम ईश्वर से करते तो अब तक न जाने क्या हो जाते।' पत्नी की तीखी बातें तुलसी को चुभ गयीं। वे तुरन्त वहाँ से लौट पड़े। घर-द्वार छोड़कर अनेक जगहों में घूमते रहे फिर साधु वेश धारण कर स्वयं को श्रीराम की भक्ति में समर्पित कर दिया।

काशी में श्री राम की भक्ति में लीन तुलसी को हनुमान के दर्शन हुए। कहा जाता है कि उन्होंने हनुमान से श्रीराम के दर्शन कराने को कहा। हनुमान ने कहा राम के दर्शन चित्रकूट में होंगे। तुलसी ने चित्रकूट में राम के दर्शन किए। चित्रकूट से तुलसी अयोध्या आये। यहीं सम्वत् 1631 में उन्होंने 'रामचरित मानस' की रचना प्रारम्भ की। उनकी यह रचना काशी के अस्सी घाट में दो वर्ष सात माह छब्बीस दिनों में सम्वत् 1633 में पूरी हुई। जनभाषा में लिखा यह ग्रन्थ -रामचरित मानस, न केवल भारतीय साहित्य का बल्कि विश्व साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। इसका अनुवाद अन्य भारतीय भाषाओं के साथ विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ है। रामचरित मानस में श्रीराम के चरित्र को वर्णित किया गया है। इसमें जीवन के लगभग सभी पहलुओं का नीतिगत वर्णन है। भाई का भाई से, पत्नी का पति से, पति का पत्नी से, गुरु का शिष्य से,शिष्य का गुरु से, राजा का प्रजा से कैसा व्यवहार होना चाहिए, इसका अति सजीव चित्रण है। राम की रावण पर विजय इस बात का प्रतीक है कि सदैव बुराई पर अच्छाई, असत्य पर सत्य की विजय होती है।

तुलसी ने जीवन में सुख और शान्ति का विस्तार करने के लिए जहाँ न्याय, सत्य और प्राणिमात्र से प्रेम को अनिवार्य माना है वहीं दूसरों की भलाई की प्रवृत्ति को मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म कहा है। उनकी दृष्टि में दूसरों को पीड़ा पहँुचाने से बड़ा कोई पाप नहीं है। उन्होंने लिखा है कि-

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।

रामचरित मानस के माध्यम से तुलसीदास ने जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। इसी कारण रामचरित मानस केवल धार्मिक ग्रन्थ न होकर पारिवारिक, सामाजिक एवं नीतिसम्बन्धी व्यवस्थाओं का पोषक ग्रन्थ भी है। तुलसी ने रामचरित मानस

के अलावा और भी ग्रन्थों की रचना की है जिनमें विनय पत्रिका, कवितावली,दोहावली, गीतावली आदि प्रमुख हैं।
तुलसीदास समन्वयवादी थे। उन्हें अन्य धर्मांे, मत-मतान्तरों में कोई विरोध नहीं दिखायी पड़ता था। तुलसीदास जिस समय हुए उस समय मुगल सम्राट अकबर का शासन काल था। अकबर के अनेक दरबारियों से उनका परिचय था। अब्दुर्रहीम खानखाना से जो स्वयं बहुत बड़े विद्वान तथा कवि थे, तुलसीदास की मित्रता थी। उन्होंने तुलसीदास की प्रशंसा में यह दोहा कहा-

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।

तुलसीदास अपने अंतिम समय में काशी में गंगा किनारे अस्सीघाट में रहते थे। वहीं इनका देहावसान सम्वत् 1680 में हुआ। इनकी मृत्यु को लेकर एक दोहा प्रसिद्ध है-

संवत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर।।

भक्त, साहित्यकार के रूप में तुलसीदास हिन्दी भाषा के अमूल्य रत्न हैं।

अभ्यास-प्रश्न

1. तुलसीदास का जन्म कहाँ हुआ था ?
2. तुलसीदास में रामभक्ति कैसे उत्पन्न हुई ?
3. रामचरित मानस की रचना कब प्रारम्भ हुई ? यह कितने समय में पूर्ण हुई ?
4. रामचरित मानस में तुलसी ने किन सामाजिक व्यवहारों का वर्णन किया है ?
5. अब्दुर्रहीम खानखाना ने तुलसी की प्रशंसा में कौन सा दोहा लिखा था ?
6. तुलसीदास की मृत्यु कब हुई ?
7. सही वाक्य पर सही (√) और गलत वाक्य पर गलत (ग्) का निशान लगाइए -

(क) तुलसीदास समन्वयवादी कवि थे।
(ख) हरिद्वार में तुलसी को श्रीराम के दर्शन हुए।
(ग) रामचरित मानस विश्व का अद्वितीय ग्रन्थ है।
(घ) तुलसीदास ने सम्पूर्ण भारत की यात्रा की।

योग्यता विस्तार

अपनी कक्षा में कवि दरबार का आयोजन कर उसमें तुलसीदास समेत विभिन्न कवियों की कविताओं का पाठ कीजिए।

पाठ - 10

G9BWH7

नामदेव

जिस प्रकार उत्तर भारत में अनेक सन्त हुए हैं, उसी प्रकार दक्षिण भारत में भी महान सन्त हुए हैं, जिनमें नामदेव भी एक हैं। नामदेव के जीवन के सम्बन्ध में कुछ ठीक से ज्ञात नहीं है। इतना पता चलता है कि जिन्होंने इन्हें पाला, उनका नाम दामोदर था। दामोदर की पत्नी का नाम गुणाबाई था। वे पंढरपुर में गोकुलपुर नामक गाँव में रहते थे। भीमा नदी के किनारे इन्हें नामदेव शिशु की अवस्था में मिले थे। यही नामदेव के माता-पिता माने जाते हैं। घटना आज से लगभग आठ सौ साल पहले की है।

उनकी शिक्षा कहाँ हुई थी, इसका पता नहीं। इतना पता लगता है कि आठ वर्ष की अवस्था से वे योगाभ्यास करने लगे। उसी समय से उन्होंने अन्न खाना छोड़ दिया और शरीर की रक्षा के लिए केवल थोड़ा-सा दूध पी लिया करते थे। स्वयं अध्ययन करके इन्होंने अपूर्व बुद्धि तथा ज्ञान प्राप्त किया था।

नामदेव के विषय में अनेक चमत्कारी कथाएँ मिलती हैं। एक घटना इस प्रकार बतायी गयी है कि एक बार इनके पिता इनकी माता को साथ लेकर कहीं बाहर गये। यह लोग कृष्ण के बड़े भक्त थे और घर में विट्ठलनाथ की मूर्ति स्थापित कर रखी थी जिसकी नियमानुसार प्रतिदिन पूजा होती थी। नामदेव से उन लोगों ने कहा, हम लोग बाहर जा रहे हैं। विट्ठलनाथ को खिलाये बिना न खाना। उनका अभिप्राय भोग लगाने का था किन्तु नामदेव ने सीधा अर्थ लिया। दूसरे दिन भोजन बनाकर थाल परोसकर मूर्ति के पास पहुँच गये और विट्ठलनाथ से भोजन करने का आग्रह करने लगे। बारम्बार कहने पर भी विट्ठलनाथ टस से मस नहीं हुए। नामदेव झुँझलाकर वहीं बैठ गये। माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना करना वे पाप समझते थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक विट्ठलनाथ भोजन नहीं ग्रहण करेंगे, मैं यूँ ही बैठा रहूँगा। कहा जाता है कि नामदेव के हठ से विट्ठलनाथ ने मनुष्य शरीर धारण कर भोजन ग्रहण किया।

जब नामदेव के पिता लौटे और उन्होंने यह घटना सुनी तब उन्हें विश्वास नहीं हुआ किन्तु जब बार-बार नामदेव ने कहा तब उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। वे जानते थे कि यह

बालक कभी झूठ नहीं कहेगा। उन्होंने कहा, ‘‘बेटा, तू भाग्यवान है। तेरा जन्म लेना इस संसार में सफल हुआ। भगवान तुझ पर प्रसन्न हुए और स्वयं तुझे दर्शन दिया।’’ नामदेव यह सुनकर पुलकित हो गए और उसी दिन से दूनी लगन से पूजा करने लगे।

एक दिन नामदेव औषधि के लिए बबूल की छाल लेने गये। पेड़ की छाल इन्होंने काटी ही थी कि उसमें रक्त के समान तरल पदार्थ बहने लगा। नामदेव को ऐसा लगा कि जैसे उन्होंने मनुष्य की गर्दन पर कुल्हाड़ी चलायी है। पेड़ को घाव पहुँचाने का इन्हें पश्चाताप हुआ। उसी दिन उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वे घर छोड़कर चले गये।

घर छोड़ने के बाद ये देश के अनेक भागों में भ्रमण करते रहे। साधु-सन्तों के साथ रहते थे और भजन-कीर्तन करते थे। एक बार की घटना है कि चार सौ भक्तों के साथ यह कहीं जा रहे थे। लोगों ने समझा कि डाकुओं का दल है, डाका डालने के लिए कहीं जा रहा है। अधिकारियों ने पकड़ लिया और राजा के पास ले गये। वहीं राजा के सामने एक मृत गाय को जीवित कर इन्होंने राजा को चमत्कृत कर दिया। राजा यह चमत्कार देखकर डर गया।

नामदेव के सम्बन्ध में ऐसी सैकड़ों घटनाओं का वर्णन मिलता है। इन घटनाओं में सच्चाई न भी हो तो भी उनसे इतना पता चलता है कि उनकी शक्ति एवं प्रतिभा अलौकिक थी। कठिन साधना और योग के अभ्यास के बल पर बहुत से कार्यों को भी उन्होंने सम्भव कर दिखाया।

वे स्वयं भजन बनाते थे और गाते थे। उनके शिष्य भी गाते थे। इन भजनों को ‘अभंग’ कहते हैं। उनके रचे सैकड़ों अभंग मिलते हैं और महाराष्ट्र के रहने वाले बड़ी भक्ति तथा श्रद्धा से आज भी उनके अभंग गाते हैं। महाराष्ट्र में उनका नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है।

महाराष्ट्र ही नहीं, सारे देश के लोग उन्हें बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और उनकी गणना उसी श्रेणी में है जिसमें तुलसी, रामदास, नरसी मेहता और कबीर की है।

अभ्यास प्रश्न-

1. नामदेव का जन्म कहाँ हुआ था? इनका पालन-पोषण किसने किया?
2. नामदेव को वैराग्य कब उत्पन्न हुआ?
3. नामदेव द्वारा लिखित भजन को किस नाम से जाना जाता है?
4. नामदेव की किसी एक चमत्कारिक घटना का वर्णन कीजिए।

पाठ - 11

G9KSIU

अबुल फजल

अबुल फजल के पूर्वज कई पीढ़ी पहले भारत में आकर बस गये थे। इनके पिता मुबारक आगरा के पास रहते थे। उनके दो पुत्र थे फैजी और अबुल फजल। मुबारक बड़े स्वतंत्र विचार के थे। जो बातें उन्हें ठीक नहीं जँचती थी उन्हें वे नहीं मानते थे। मुबारक का प्रभाव दोनों भाइयों पर पड़ा। दोनों भाई धार्मिक बातों में अति उदार और विवेकशील थे। दोनों बहुत विद्वान और अनेक विषयों के कुशल ज्ञाता थे।

अबुल फजल का जन्म 14 जनवरी सन् 1551 ई0 को आगरा के पास ही हुआ था। फैजी इनसे चार साल बड़े थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इनके पिता द्वारा ही हुई। जब अबुल फजल छोटे थे तभी राजधानी के निकट उपद्रव हो गया था। मुबारक उपद्रवियों के साथ रहे, इसलिए अकबर के कोप के भाजन हो गये। किन्तु कुछ ही दिनों में कुछ लोगों के प्रयत्न से अकबर ने उन्हें क्षमा कर दिया। फैजी अकबर के दरबार में गये। उन्होंने कविता पढ़ी। उनकी मधुर कविता पर अकबर मुग्ध हो गये और वे उसी दिन से दरबार में आने-जाने लगे। अबुल फजल उस समय पन्द्रह वर्ष के थे। दिन-रात अध्ययन में लगे रहते थे। इनके ज्ञान को देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। उसी समय की एक घटना कही जाती है। अबुल फजल को एक फारसी पुस्तक मिली। पुस्तक अच्छी थी, किन्तु आधी जल गयी थी। अबुल फजल ने जला अंश कैंची से काट डाला, वहाँ सादा कागज जोड़ा और ऊपर से पढ़कर अपने मन से सब पृष्ठों में शेष अंश लिख डाला। कुछ दिनों के बाद कहीं से उस पुस्तक की दूसरी प्रतिलिपि कोई लाया। अबुल फजल ने अपनी प्रति उससे मिलायी। उन्होंने जो लिखा था उसमें कहीं नये शब्द तथा नये ढंग के वाक्य आ गये थे, किन्तु बात जो अबुल फजल ने लिखी थी वह पूरी पुस्तक में थी।

ये चौबीस वर्ष के थे जब अकबर से इनकी भेंट हुई। फैजी ने अपने छोटे भाई का परिचय सम्राट से कराया। पहले ही दिन अकबर पर इनकी विद्वता का प्रभाव पड़ा। अकबर बंगाल पर आक्रमण करने जा रहे थे। सब लोग साथ गये। अबुल फजल नहीं गये। अकबर ने अनेक बार इन्हें स्मरण किया। जब बंगाल पर विजय प्राप्त कर अकबर फतेहपुर सीकरी

लौटे तब अबुल फजल ने उन्हंे कुरान की एक टीका भेंट की जो उन्होंने स्वयं अपने ढंग से तैयार की थी।

अबुल फजल ने राजकुमारों को कुछ दिन पढ़ाया भी था। दरबार में उनका मान प्रतिदिन बढ़ता गया। अनेक राजकीय पदों पर उन्होंने काम किया। अबुल फजल विद्वान तो थे ही, सैनिक भी थे और कई युद्धों में सम्राट की ओर से गये थे। युद्धों का संचालन भी किया था।

एक बार अकबर के पुत्र जहाँगीर अकबर से विद्रोह कर बैठे। उस समय बहुत से सैन्य अधिकारी गुप्त रूप से जहाँगीर का साथ दे रहे थे। अबुल फजल ने सब प्रकार से सम्राट की सहायता की और उसके परिणामस्वरूप जहाँगीर अपने कार्य में सफल न हो सका। जहाँगीर ने समझा अबुल फजल ही राह का काँटा है, उसे ही हटाना चाहिए। अबुल फजल उन दिनों दक्षिण में थे। उन्हें अकबर ने बुलाने के लिए आदमी भेजे। जहाँगीर को इसका पता लग गया। उसने उनकी हत्या की गुप्त योजना की। अबुल फजल जब दक्षिण से लौट रहे थे, राह में लड़ाई मंे वे मारे गये। अकबर उनकी बाट देख रहे थे। दिन पर दिन गिने जाने लगे। किसी का साहस नहीं होता था कि यह समाचार अकबर के सम्मुख ले जाये। अन्त में यह समाचार अकबर के सम्मुख लोग ले गये। जब उन्हें पता लगा कि जहाँगीर ही अबुल फजल के वध के कारण थे, उनके शोक की सीमा न रही। कई दिन तक उन्होंने भोजन नहीं किया। उन्होंने कहा- ‘‘यदि सलीम (जहाँगीर का असली नाम) राज्य ही चाहता था तो मुझे क्यों नहीं मार डाला ? अबुल फजल के जीते रहने से मैं कितना सुखी होता।’’

अबुल फजल शत्रु से भी कठोर वचन नहीं बोलते थे। सत्य को ही वे सबसे बड़ा धर्म मानते थे। इसी से इनका किसी धर्म से विरोध नहीं रहा। घर के नौकर-चाकर भी इन्हें अपने घर का ही समझते थे। यदि किसी कर्मचारी में त्रुटि पाते थे तो समझा-बुझाकर उसे ठीक राह पर लाते थे।

अकबर ने अबुल फजल की अनेक संस्कृत पुस्तकों का फारसी में अनुवाद करने के लिए कहा था। महाभारत, भागवत आदि कुछ संस्कृत ग्रन्थों का उन्हांेने फारसी में अनुवाद किया था जो अब तक मिलते हैं। फारसी में उन्होंने ‘अकबरनामा’ नामक विशाल ग्रन्थ लिखा जिसमें अकबर के राज्य का वर्णन है। ‘आइने अकबरी’ भी इन्हीं का लिखा ग्रन्थ है। उसमंे भी अकबर के शासन की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें लिखी हैं। दोनों ग्रन्थ इतिहास की दृष्टि से श्रेष्ठ माने जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. अबुल फजल का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
2. अबुल फजल को लोगों ने नास्तिक क्यों बताया ?
3. अबुल फजल की हत्या की योजना किसने और कैसे बनायी ?
4. अबुल फजल ने कौन-कौन से ग्रन्थ लिखे ?

पाठ - 12

छत्रपति शिवाजी

भारतीय इतिहास के महापुरुषों में शिवाजी का नाम प्रमुख है। वे जीवन भर अपने समकालीन शासकों के अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करते रहे।

शिवाजी का जन्म 4 मार्च सन् 1627 ई0 को महाराष्ट्र के शिवनेर के किले में हुआ था। इनके पिता का नाम शाहजी और माता का नाम जीजाबाई था। शाहजी पहले अहमदनगर की सेना में सैनिक थे। वहाँ रहकर शाहजी ने बड़ी उन्नति की और वे प्रमुख सेनापति बन गये। कुछ समय बाद शाहजी ने बीजापुर के सुल्तान के यहाँ नौकरी कर ली। जब शिवाजी लगभग दस वर्ष के हुए तब उनके पिता शाहजी ने अपना दूसरा विवाह कर लिया। अब शिवाजी अपनी माता के साथ दादाजी कोणदेव के संरक्षण में पूना में रहने लगे।

जीजाबाई धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। उन्होंने बड़ी कुशलता से शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध किया। दादाजी कोणदेव की देख-रेख में शिवाजी को सैनिक शिक्षा मिली और वे घुड़सवारी, अस्त्रों-शस्त्रों के प्रयोग तथा अन्य सैनिक कार्यों में शीघ्र ही निपुण हो गये। वे पढ़ना, लिखना तो अधिक नहीं सीख सके, परन्तु अपनी माता से रामायण, महाभारत तथा पुराणों की कहानियाँ सुनकर उन्होंने हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। माता ने शिवाजी के मन में देश-प्रेम की भावना जाग्रत की। वे शिवाजी को वीरों की साहसिक कहानियाँ सुनाती थीं। बचपन से ही शिवाजी के निडर व्यक्तित्व का निर्माण आरम्भ हो गया था।

शिवाजी सभी धर्मों के संतों के प्रवचन बड़ी श्रद्धा के साथ सुनते थे। सन्त रामदास को उन्होंने अपना गुरु बनाया। गुरु पर उनका पूरा विश्वास था और राजनीतिक समस्याओं के समाधान में भी वे अपने गुरु की राय लिया करते थे। दादाजी कोणदेव से शिवाजी ने शासन सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कर लिया था पर जब शिवाजी बीस वर्ष के थे तभी उनके दादा की मृत्यु हो गयी। अब शिवाजी को अपना मार्ग स्वयं बनाना था। भावल प्रदेश के साहसी नवयुवकों की सहायता से शिवाजी ने आस-पास के किलों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। बीजापुर के सुल्तान से उनका संघर्ष हुआ। शिवाजी ने अनेक किलों को जीत लिया और रायगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।

बीजापुर का सुल्तान शिवाजी को नीचा दिखाना चाहता था। उसने अपने कुशल सेनापति अफजल खाँ को पूरी तैयारी के साथ शिवाजी को पराजित करने के लिए भेजा। अफजल खाँ जानता था कि युद्ध भूमि में शिवाजी के सामने उसकी दाल नहीं गलेगी इसलिए कूटनीति से उसने शिवाजी को अपने जाल में फँसाना चाहा। उसने दूत के द्वारा शिवाजी के पास संधि प्रस्ताव भेजा। उन्हें दूत की बातों से अफजल खाँ के कपटपूर्ण व्यवहार का आभास मिल गया था। अतः वे सतर्क होकर अफजल खाँ से मिलने गये। उन्होंने साहसपूर्वक स्थिति का सामना किया और हाथ में पहने हुए बघनख से अफजल खाँ का वध कर दिया।

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति से मुगल बादशाह औरंगज़ेब को चिन्ता हुई। उसने अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा और उससे शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को नष्ट करने को कहा। शाइस्ता खाँ पूना के एक महल में ठहरा था। रात के समय शिवाजी ने अपने सैनिकों के साथ शाइस्ता खाँ पर आक्रमण कर दिया। लेकिन वे अँधेरे मंे कमरे से भाग निकला। इस पराजय से मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बड़ी क्षति पहुँची।

अब शिवाजी का दमन करने के लिए औरंगज़ेब ने आमेर के राजा जयसिंह को भेजा। जयसिंह नीतिकुशल, दूरदर्शी, योग्य और साहसी सेनानायक था। इन दोनों के मध्य दो महीने तक घमासान युद्ध हुआ। अन्त में शिवाजी संधि करने के लिए विवश हो गये और उनको जयसिंह की सभी शर्तें स्वीकार करनी पड़ी।

जब जयसिंह के साथ शिवाजी आगरा पहुँचे तब नगर के बाहर उनका स्वागत नहीं किया गया। मुगल दरबार में भी उनको यथोचित सम्मान नहीं मिला। स्वाभिमानी शिवाजी यह अपमान सहन न कर सके, वे मुगल सम्राट की अवहेलना करके दरबार से चले आये। औरंगज़ेब ने उनके महल के चारों ओर पहरा बैठाकर उनको कैद कर लिया। वे शिवाजी का वध करने की योजना बना रहा था। इसी समय शिवाजी ने बीमार हो जाने की घोषणा कर दी। वे ब्राह्मणों और साधु सन्तों को मिठाइयों की टोकरियाँ भिजवाने लगे। बँहगी में रखी एक ओर की टोकरी में स्वयं बैठकर वे आगरा नगर से बाहर निकल गये और कुछ समय

बाद अपनी राजधानी रायगढ़ पहुँच गये। शिवाजी के भाग निकलने का औरंगज़ेब को जीवन-भर पछतावा रहा।

शिवाजी को अपनी सैन्य शक्ति का पुनः गठन करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने मुगलों से सन्धि करने मंे हित समझा। दक्षिण के सूबेदार राजा जयसिंह की मृत्यु हो चुकी थी और उनके स्थान पर शाहजादा मुअज्जम दक्षिण का सूबेदार था। उसकी सिफारिश पर औरंगज़ेब ने सन्धि स्वीकार कर ली और शिवाजी की राजा की उपाधि को भी मान्यता दे दी। अब शिवाजी अपने राज्य की शासन-व्यवस्था को सुदृढ़ करने में लग गये।

शिवाजी बहुत प्रतिभावान और सजग राजनीतिज्ञ थे। उन्हें अपने सैनिकों की क्षमता और देश की भौगोलिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान था। इसलिए उन्होंने दुर्गों के निर्माण और छापामार युद्ध में मुगल सेनाओं की सहायता करके उनको अपना मित्र भी बनाये रखा। उनकी यह नीति उनके युग के लिए नयी थी। यद्यपि उनका जीवन एक तूफानी दौर के बीच से गुजर रहा था पर वे अपने राज्य की शासन व्यवस्था के लिए समय निकाल लेते थे।

शिवाजी की ओर से औरंगज़ेब का मन साफ नहीं था इसलिए सन्धि के दो वर्ष बाद ही फिर संघर्ष आरम्भ हो गया। शिवाजी ने अपने वे सब किले फिर जीत लिये जिनको जयसिंह ने उनसे छीन लिया था। उनकी सेना फिर मुगल राज्य में छापा मारने लगी। उन्होंने कोडाना के किले पर आक्रमण करके अधिकार प्राप्त कर लिया और उसका नाम सिंहगढ़ रख दिया। अनेक अन्य किलों पर अधिकार कर लेने के बाद शिवाजी ने सूरत पर छापा मारा और बहुत सी सम्पत्ति प्राप्त की। इस प्रकार प्राप्त सम्पत्ति का कुछ भाग तो वे उदारता से अपने सैनिकों में बाँट देते थे और शेष सेना के संगठन तथा प्रजा के हित के कार्यों में खर्च करते थे। शिवाजी परिस्थिति को देखकर अपनी रणनीति बनाते थे, इसीलिए उनकी विजय होती थी।

अब शिवाजी महाराष्ट्र के विस्तृत क्षेत्र के स्वतन्त्र शासक बन गए और सन् 1674 ई0 में बड़ी धूमधाम से उनका राज्याभिषेक हुआ। उसी समय उन्होंने छत्रपति की पदवी धारण की। इस अवसर पर उन्होंने बड़ी उदारता से दीन दुःखियों को दान दिया।

राज्याभिषेक के बाद भी शिवाजी ने अपना विजय अभियान जारी रखा। बीजापुर और कर्नाटक पर आक्रमण करके समुद्रतट के सारे प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया। शिवाजी ने ही सबसे सुव्यवस्थित ढंग से पहले नौसेना का संगठन किया। शिवाजी महान दूरदर्शी थे और वे यह जानते थे कि भविष्य में देश को नौसेना की भी आवश्यकता होगी।

शिवाजी सभी धर्मों का समान आदर करते थे। राज्य के पदों के वितरण में भी कोई भेद-भाव नहीं रखते थे। उनके राज्य मंे स्त्रियों का बड़ा सम्मान किया जाता था। युद्ध में यदि शत्रु पक्ष की कोई महिला उनके अधिकार में आ जाती तो वे उसका सम्मान करते थे और उसे उसके पति अथवा माता-पिता के पास पहुँचा देते थे। उनका राज्य धर्मनिरपेक्ष राज्य

था। उनके राज्य में हर एक व्यक्ति को धार्मिक स्वतन्त्रता थी। अत्याचार के दमन को वे अपना कर्त्तव्य समझते थे, इसीलिए सेना संगठन को विशेष महत्व देते थे। सैनिकों की सुख-सुविधा का वे विशेष ध्यान रखते थे। शिवाजी के राज्य में अपराधी को दण्ड अवश्य मिलता था। जब उनका पुत्र शम्भाजी अमर्यादित व्यवहार करने लगा तो उसे भी शिवाजी के आदेश से बन्दी बना लिया गया था।

शिवाजी ने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना का महान संकल्प लिया था और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे आजीवन संघर्ष करते रहे। सच्चे अर्थों में शिवाजी एक महान राष्ट्रनिर्माता थे। उन्हीं के पदचिह्नों पर चलकर पेशवाओं ने भारत में मराठा शक्ति और प्रभाव का विस्तार कर शिवाजी के स्वप्न को साकार किया।

अभ्यास

1. शिवाजी को अपने आरम्भिक जीवन में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ?

2. शिवाजी को मराठा राज्य की स्थापना करने में क्यों सफलता मिली ?

3. शिवाजी की रणनीति पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

4. किस आधार पर आप कह सकते हैं कि शिवाजी एक योग्य शासक थे ?

पाठ - 13

गुरु गोविन्द सिंह

समय-समय पर इस धरती पर कुछ ऐसी विभूतियाँ जन्म लेती रही हैं, जिनके विचारों से हम सभी का जीवन प्रकाशित होता है। ऐसी ही महान विभूतियों में गुरु गोविन्द सिंह की गणना की जाती है।

गुरु गोविन्द सिंह का जन्म उस समय हुआ जब भारत में मुगलों का शासन था। मुगल शासकों की कार्यनीति एवं समाज के प्रति अपनाए गए व्यवहार से जनता में असंतोष बढ़ रहा था। गुरु तेग बहादुर के पुत्र तथा उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द सिंह ने सिख-आन्दोलन को नई दिशा दी। जनता पर हो रहे क्रूर अत्याचार को देखकर गोविन्द सिंह ने बाल्यकाल में ही अनुभव किया कि आतंक तथा भ्रष्ट शासन से निबटने के लिए समाज को संगठित होना चाहिए।

जन्म - 1666

जन्म स्थान - पटना (बिहार)

मृत्यु - 1708

मृत्यु स्थान - नान्दे (हैदराबाद)

उनकी लड़ाई प्रमुख रूप से तत्कालीन शासन से थी न कि इस्लाम धर्म से। इसका स्पष्ट प्रमाण इस बात से मिलता है कि इन्होंने अपनी सेवा में कई पठानों को लगा रखा था और इस लड़ाई में उन्हें पीर बुद्धू शाह का सहयोग प्राप्त था। मुगलों के विरुद्ध लड़ाई में सईद बेग और मेमू खंाँ भी उनकी तरफ से लड़े थे। नबी खाँ और गनी खाँ ने उन्हें मुगल सेना से बचाया था। वे पंजाब में भी वैसी ही जागृति पैदा करना चाहते थे जैसी शिवाजी ने महाराष्ट्र में की थी।

गोविन्द सिंह को लगभग 10 वर्ष की अवस्था में गुरु की गद्दी मिली। सिख-धर्म का आरम्भ बाबा नानक ने किया था। बाबा नानक के बाद सिख धर्म मानने वालों की संख्या में वृद्धि होने लगी। अब सिखों ने अपनी आत्मरक्षा हेतु अपने आपको संगठित करना प्रारम्भ कर दिया। दसवें गुरु गोविन्द सिंह के समय सिख लोग भली - भाँति संगठित हो गए। वे सैनिकों की भाँति घुड़सवारी करते, तलवार चलाते और लड़ाई लड़ते थे। इतना ही नहीं कुछ राज-काज भी होने लगा। अब गुरु लोग धार्मिक गुरु के साथ-साथ राजा के समान रहने लगे। इनके शिष्य इन्हें भेंट देते। इस कार्य के लिए इन्होंने स्थान-स्थान पर कुछ व्यक्ति नियुक्त कर दिए जिन्हें 'मसन्द' कहते थे। गुरु हरगोविन्द ने जो गुरुगोविन्द सिंह के पितामह थे, सिखों को पूरा सैनिक बना दिया था। वे स्वयं सैनिक वेश में दरबार किया करते थे। उनके शिष्य तथा दरबारी उन्हें 'सच्चे बादशाह' कहते थे।

जिस समय गोविन्द सिंह गुरु की गद्दी पर बैठे, पंजाब में सिखों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी। वे अपने गुरु से अत्यधिक प्रेम करते थे। गुरु गोविन्द सिंह शिष्यों के आग्रह पर अम्बाला के निकट आनन्दपुर नामक स्थान पर आ गये। यह उनके पिता गुरु तेग बहादुर सिंह की राजधानी थी।

गुरु गोविन्द सिंह आनन्दपुर में लगभग 20 वर्षों तक रहे और यहंाँ उन्होंने हिन्दू धर्मग्रन्थों का बड़ी गम्भीरता से अध्ययन किया। इसी बीच उन्होंने एक पुस्तक का संकलन और सम्पादन किया जिसे 'दशम ग्रन्थ' कहते हैं। वे स्वयं एक अच्छे कवि और विचारक थे। गुरु नानक की भंाँति वे भी एक ईश्वर को मानने वाले थे। अन्य धर्मावलम्बियों को भी ये सम्मान देते थे और किसी अन्य धर्म का इन्होंने कभी विरोध नहीं किया। इनके द्वारा रचित 'चंडी चरित्र' और 'चंडी का वार' नामक पुस्तकें वीर रस के सुन्दर काव्य हैं। इन पुस्तकों के माध्यम से इन्होंने अपने शिष्यों में अदम्य साहस और वीरता का संचार किया। ये अच्छे

आशुकवि भी थे। उपदेश देते-देते वे कविता कहने लगते थे। इससे सुनने वालों पर गहरा प्रभाव पड़ता था।

इन्होंने एक पुस्तक 'विचित्र नाटक' भी लिखी है। इसके द्वारा उन्होंने लोगों में उत्साह भरने का कार्य किया।

पुस्तक विचित्र नाटक में उन्होंने लिखा है, "तुम हमारे पुत्र के समान हो, नया पंथ चलाओ। लोगों से कहो कि सत्य की राह पर चलें और नासमझी से काम न करें।

सन् 1699 ई0 में बैसाखी वाले दिन गुरु गोविन्द सिंह जी ने 'खालसा पंथ' अथवा सिख धर्म की स्थापना की।

बैसाखी वाले दिन आनन्दपुर साहिब में लोग एकत्र हुए। श्री केश गढ़ साहिब में एक दीवान लगाया गया, जहाँ हजारों मनुष्यांें की भीड़ इकट्ठी थी। गुरु गोविन्द सिंह आए। उन्होंने कहा "आप सब लोग मेरे भक्त हैं। आज खालसा के लिए बलिदान की आवश्यकता है और सबसे बड़ा बलिदान मनुष्यों का ही हो सकता है। आप लोगों में जो बलिदान देने के लिए तैयार हांे वे सामने आएँ।" सब लोगों में एकदम सन्नाटा छा गया। किसी का साहस बलि चढ़ने का नहीं होता था। थोड़ी देर बाद एक व्यक्ति तैयार हुआ। वह सामने आया। उसे गुरु गोविन्द सिंह अन्दर ले गए। तम्बू के अन्दर तलवार के वार की तथा धड़ गिरने की आवाज आयी। इसके पश्चात् वे हाथ में खड्ग लिए फिर बाहर आए। वे बोले एक बलि और चाहिए। इस प्रकार पहले से जल्दी दूसरा आदमी तैयार हो गया। उसको भी वे अन्दर ले गये और बलि दे दी। बाहर आकर तीसरी बलि की माँग की। इस बार शीघ्र ही दूसरा आदमी वह अन्दर ले गए। इसके बाद गुरु गोविन्द सिंह के साथ वे पाँचों सुसज्जित वस्त्रों के साथ बाहर आये। लोगों को बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने समझा कि वे गुरु के आशीर्वाद से ही जीवित हो उठे। वे पाँचो व्यक्ति 'पंच प्यारे' कहलाये क्योंकि वे मृत्यु का डर छोड़कर अपनी बलि देने को तैयार हो गये।

उन्होंने पाँच वस्तुओं को ग्रहण करना आवश्यक बताया। वे वस्तुएँ हैं - (1) केश, (2) कड़ा, (3) कंघा, (4) कच्छ, (5) कृपाण। ये 'पंाँच ककार' कहे जाते हैं। प्रत्येक सिख इन पाँच वस्तुओं को अपने साथ रखता है।

गुरु गोविन्द सिंह ने यह भी अनुभव किया कि जाति-पाँति से देश को बड़ी हानि हो रही है और संगठन में यह बाधक है। इसलिए सिख धर्म में उन्होंने जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं रखा। उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि 'कट्टरता छोड़ो और अपने गुरु की आज्ञा को ही सबसे बढ़कर मानो।' उन्होंने अपने शिष्यों से जाति-सूचक शब्द को छोड़कर प्रत्येक सिख के नाम में सिंह जोड़ना आवश्यक बना दिया, जिससे वे अपने को ंसिंह के समान अनुभव करें। इन सबका परिणाम यह हुआ कि सिख संगठित सैनिक बन गए। पास-पड़ोस के राजा उनसे ईर्ष्या करने लगे। आनन्दपुर के पड़ोसी राजाओं से उनका युद्ध भी हुआ, जिसमें ये विजयी रहे किन्तु आगे और भी विपत्ति खड़ी हो गयी। सिखों की वीरता की बात

जब औरंगजेब के कानों में पड़ी तो वह इस बात से चिन्तित और भयभीत हो गया कि उसकी राजधानी दिल्ली के निकट एक नई शक्ति उभर रही है। उस समय औरंगज़ेब दक्षिण में था। उसने अपने सैनिकों को वहीं से आज्ञा दी कि गोविन्द सिंह पर आक्रमण किया जाय। आनन्दपुर घिर गया। बड़ी कठिनाई से गुरु गोविन्द सिंह वहाँ से कुछ साथियों के साथ बच निकले। इसके बाद लगभग छः-सात वर्षांे तक वे औरंगज़ेब से युद्ध करते रहे। इन्हीं लड़ाइयों में गुरु गोविन्द सिंह के दो पुत्र मारे गये और दो को सरहिन्द के सूबेदार ने दीवार में चुनवा दिया।

इन सब कठिनाइयों और दुःखों में भी गुरु गोविन्द सिंह ने अपना धैर्य और साहस नहीं खोया। गुरु गोविन्द सिंह के शौर्य से भयभीत औरंगजेब ने उनकी गिरफ्तारी का आदेश दे दिया। किन्तु इसी बीच औरंगजेब की मृत्यु हो गई और उसके लड़कों में राज्य के लिए लड़ाई छिड़ गई। गुरु ने उसके एक लड़के बहादुरशाह का साथ दिया जो बाद में औरंगज़ेब का उत्तराधिकारी बना। बहादुरशाह से मिलने के लिए वे दक्षिण जा रहे थे। मार्ग में किसी शत्रु द्वारा घायल कर दिए जाने से 42 वर्ष की अवस्था में गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु हो गई। अपने छोटे से जीवन काल में उन्होंने जो भी कार्य किए वे सचमुच सराहनीय है। सिख सम्प्रदाय में गुरु परम्परा की समाप्ति का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। अपनी मृत्यु से कुछ समय पूर्व एक समारोह में गुरु गोविन्द सिंह जी ने पाँच पैसे व एक नारियल 'गुरु ग्रन्थ साहिब' के आगे रखकर माथा टेका और 'गुरु ग्रन्थ साहिब' को गुरु पद की पदवी प्रदान की। इसके पश्चात् उन्होंने कहा कि आज के बाद कोई देहधारी व्यक्ति गुरु नहीं होगा, बल्कि 'गुरु ग्रन्थ साहिब जी' ही आज के बाद सिखों के गुरु होंगे 'सब सिखन को हुकुम है गुरु मान्यो ग्रन्थ।

गुरु गोविन्द सिंह सिखों के महान गुरु थे। उन्होंने भेद-भाव मिटाकर खालसा पंथ को संगठित किया और देशवासियांे में नयी स्फूर्ति एवं प्रेरणा दी। निःसंदेह वे हमारे देश के अमूल्य रत्न थे, जिन्हें हमारा देश कभी नहीं भूल सकता।

अभ्यास

1. गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों से अपने नाम में सिंह लगाने का आदेश क्यों दिया ?
2. सिखों को किन पाँच वस्तुओं को धारण करना अनिवार्य है ?
3. पंच प्यारे कौन कहलाये ?
4. रिक्त स्थानों की पूर्ति निम्नांकित में से उचित शब्दों के द्वारा कीजिए-

नान्दे(हैदराबाद), 1708, पुत्र,1666, मुगलों, पिता, 1699

(1) गुरु गोविन्द सिंह के जन्म के समय भारत में .... शासन था।

(2) गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु .... स्थान में हुई थी।

(3) गुरु तेगबहादुर, गुरुगोविन्द सिंह के .... थे।

(4) गुरु गोविन्द सिंह का जन्म .... ई0 में हुआ था।

(5) गुरु गोविन्द सिंह ने वर्ष ....में खालसा पंथ की स्थापना की थी।

5. संक्षेप में उत्तर दीजिए -

(1) 'सच्चे बादशाह' सम्बोधन किसके लिए किया गया था ?

(2) 'मसन्द' किसे कहते हैं ?

(3) गुरु गोविन्द सिंह द्वारा रचित पुस्तकों के नाम लिखिए।

6. निम्नलिखित के बारे में लिखिए -

चंडी चरित्र, विचित्र नाटक, पाँच ककार।

पाठ - 14

GI4BGA

छत्रसाल

छत्रसाल देश के उन गिने-चुने महापुरुषों में हैं जिन्होंने अपने बल, बुद्धि तथा परिश्रम से बहुत साधारण स्थिति में अपने को बहुत बड़ा बना लिया।

छत्रसाल के पिता का नाम चम्पतराय था। वे अत्यंत वीर थे। उनका जीवन सदा रणक्षेत्र में ही बीता। उनकी रानी भी सदा उनके साथ लड़ाई के मैदान में जाती थीं। उन दिनों रानियाँ बहुधा अपने पति के साथ रण में जाती थीं और पति को उत्साहित करती थीं। जब छत्रसाल अपनी माता के गर्भ में थे तब भी उनकी माता चम्पतराय के साथ रणक्षेत्र में ही थीं। चारों तरफ तलवारों की खनखनाहट और गोलियों की वर्षा हो रही थी। ऐसे ही वातावरण में छत्रसाल का जन्म एक पहाड़ी गाँव में सन् 1648 ई0 में हुआ था।

उनके पिता चम्पतराय ने सोचा कि इस प्रकार के जीवन में छत्रसाल को अपने पास रखना ठीक नहीं है। रानी छत्रसाल को लेकर नैहर चली गयीं। चार साल तक छत्रसाल वहीं रहे। उसके बाद पिता के पास आए।

बचपन से ही छत्रसाल बड़े साहसी और निर्भीक थे। इनके खिलौनों में असली तलवार भी थी। इनके खेल भी रण के खेल होते थे। प्रायः सभी लोग कहते थे कि वे अपने जीवन में पराक्रमी और साहसी पुरुष होंगे। इनके गुणों के कारण ही इनका नाम छत्रसाल रखा गया। इसके अतिरिक्त आचार-व्यवहार के गुण भी इनमें बालपन से ही थे।

इन्हें बाल्यकाल में चित्र बनाने का बहुत शौक था। ये हाथी, घोड़े, तोप और बन्दूक-सवार सैनिक का चित्र बनाया करते थे। रामायण तथा महाभारत की कथा जब होती तो बड़े मन से सुनते थे। सातवें वर्ष से इनकी शिक्षा नियमित ढंग से आरम्भ हुई उस समय वे अपने मामा के यहाँ रहते थे। पुस्तकों की शिक्षा के साथ-साथ सैनिक-शिक्षा भी इन्हें दी जाती थी। दस वर्ष की अवस्था में ही छत्रसाल अस्त्र-शस्त्र को कुशलता से चलाना सीख गये थे। हिन्दी कविता तथा अनेक धार्मिक पुस्तकें इन्होंने पढ़ लीं थीं। केशवदास कृत 'राम चन्द्रिका' इन्हें बहुत प्रिय थी।

छत्रसाल की अवस्था लगभग सोलह वर्ष की थी, जब इनके माता-पिता की मृत्यु हो गयी। छत्रसाल उस समय बहुत दुःखी हुए किन्तु उन्होंने धैर्यपूर्वक अपने आपको सँभाला और भविष्य के सम्बन्ध में सोचने लगे। छत्रसाल की अवस्था इस समय विचित्र थी। सारी जागीर छिन चुकी थी। इनके पास न सेना थी न पैसे थे। इन्होंने भविष्य का चित्र अपने मन में बना लिया और अपने काका के यहाँ चले गये। वहाँ कुछ दिन रहने के पश्चात् इन्होंने अपनी योजना अपने काका को बतायी। युद्ध की बात सुनकर इनके काका बहुत डरे। उन्होंने मुगलों की महती शक्ति का विवरण बताया और कहा कि युद्ध करना बेकार है। काका की बात इन्हें अच्छी न लगी और ये बड़े भाई के पास चले आए। बड़े भाई और ये एक ही मत के थे। दोनों ने मिलकर बुन्देलखण्ड का राज्य पुनः स्थापित करने की योजना बनायी।
पहला काम तो सेना एकत्र करना था किन्तु इसके लिए धन की आवश्यकता थी। इनकी माता के गहने एक गाँव में रखे थे। दोनों भाइयों ने गहने बेचकर छोटी सी सेना तैयार की। इसके बाद से छत्रसाल का जीवन युद्ध करते ही बीता। ये बहुत चतुर थे। इनके लड़ने का ढंग इतना योग्यतापूर्ण होता था कि कदाचित् ही कोई युद्ध ऐसा हुआ हो जिसमें छत्रसाल की हार हुई हो। जब ये देखते थे कि बैरी की सेना मेरी सेना से अधिक है तो बड़ी चतुराई से अपनी सेना हटा लेते थे। बैरी की सेना की संख्या से इन्हें कभी घबराहट नहीं हुई। जहाँ-जहाँ लड़ते थे वहाँ जो उनकी अधीनता स्वीकार कर लेता था उसे तो छोड़ देते थे, जो अधीनता नहीं स्वीकार करता था, उसकी सारी सम्पत्ति लेकर उसका बहुत अधिक भाग सैनिकों में बाँट देते थे।
छत्रसाल की शक्ति औरंगज़ेब की सैनिक शक्ति की तुलना में कुछ भी न थी। फिर भी छत्रसाल को वे हरा न सका, इसके तीन कारण थे। पहली बात तो यह थी कि छत्रसाल के लड़ने का ढंग बहुत कौशलपूर्ण था। ये और इनके भाई सेना का संचालन करते थे। ये पहाड़ी प्रदेशों मं े लड़ते थे। इन स्थानों की इन्हें विशेष रूप से जानकारी थी। जब अवसर मिलता था वे भाग जाते थे और औरंगज़ेब की सेना लाख सिर मारने पर भी इन्हें हानि नहीं पहुँचा सकती थी। तीसरी बात यह थी कि इनके सैनिक बड़े साहसी और वीर थे। इनकी विजय का हाल जो बुन्देला सुनता, इनकी सहायता करने के लिए तैयार हो जाता और सदा सहायता देता। इन्हीं सब कारणों से यह बात हुई जो कभी सम्भव न थी। और वह यह थी कि बड़े-बड़े सेनापति औरंगज़ेब की ओर से आये, अनेक स्थानों पर वे छत्रसाल से लड़े, परन्तु कहीं किसी युद्ध में विजय न पा सके। छत्रसाल सदा विजयी रहे।
छत्रसाल का राज्य धीरे-धीरे बढ़ता गया और सारा बुन्देलखण्ड इनके राज्य में आ गया। इनके राज्य का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम और प्रजा को सुखी बनाने वाला था। कोई व्यक्ति यदि स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार करता तो उसे कठोर दण्ड देते थे। सारा राज-काज उन्हीं की आज्ञा से होता था। महाराज का नियम था कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह कितना ही छोटा हो,

उनसे मिल सकता था उनकी विनती और बात वह सुनते थे। उनके दरबार में अनेक मन्त्री भी थे जिनसे वे परामर्श किया करते थे।

एक बार ये छत्रपति महाराज शिवाजी के पास भी गये। वे शिवाजी से अवस्था में छोटे थे। शिवाजी इनसे बहुत प्रेम से मिले और उन्होंने इनका बहुत सम्मान किया। उन्होंने उपदेश दिया कि वीरता से लड़ो, लालच कभी मत करना और अधर्म कभी मत करना। किसी धर्म या जाति से द्वेष न करना। शिवाजी की ये बातें उन्होंने सदा याद रखीं।

शिवाजी के बाद उन्होंने मराठों से सहायता माँगी। सिंहासन पर अब कोई बलशाली राजा नहीं रह गया था और मुगल राज के वंशजों में ही झगड़ा हो रहा था। छत्रसाल को भी इस समय अपने राज्य की रक्षा के लिए लड़ना पड़ा। छत्रसाल बूढ़े हो चले थे, वीरता और साहस ने इनका साथ न छोड़ा था, फिर भी इस समय इन्हें सहायता की आवश्यकता आ पड़ी, इसलिए उन्होंने पेशवा बाजीराव से सहायता माँगी और उन्होंने सहायता दी।

महाराज छत्रसाल कविता और साहित्य के प्रेमी थे। उनके दरबार में सदा अच्छे-अच्छे कवि रहते थे और सदा उन्हें पुरस्कार मिलता रहता। कवियों का यह कितना सम्मान करते थे, इसका पता एक घटना से लग सकता है। भूषण कविराज शिवाजी के यहाँ रहते थे। वे एक बार छत्रसाल के यहाँ आये। जब वे इनके महल के निकट पहुँचे, छत्रसाल बाहर आये और आगे जाकर भूषण की पालकी में अपना कन्धा भी लगा दिया। ज्यों ही भूषण को पता लगा वे तुरन्त ही कूद पड़े। बोले, " महाराज, यह आपने क्या किया।" छत्रसाल ने उत्तर दिया, "आप ऐसे महान कवि का सम्मान शिवाजी महाराज के यहाँ होता है। मैं उनकी समता कैसे कर सकता हूँ। मैं इसी प्रकार आपका सम्मान कर सका।" शिवाजी की मृत्यु के बाद भूषण छत्रसाल के यहाँ अनेक बार आये। भूषण ने छत्रसाल की प्रशंसा में भी कविताएँ लिखी हैं।

इनके दरबार में जो कवि रहते थे इनमें लाल कवि भी एक कवि थे जिन्होंने छत्रसाल के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है- छत्रप्रकाश। छत्रसाल स्वयं कविता करते थे और उनकी अनेक वीरता से भरी रचनाएँ तथा कविताएँ मिलती हैं। विख्यात छतरपुर नगर महाराज छत्रसाल का ही बसाया हुआ है।

यह बात विख्यात है कि शिवाजी के गुरु रामदास थे, जिन्होंने उन्हें बहुत अच्छे-अच्छे उपदेश दिए। शिवाजी को शिवाजी भी उन्होंने बनाया। इसी प्रकार महाराज छत्रसाल के भी गुरु थे। इनका नाम प्राणनाथ था।

बुन्देलखण्ड को शक्तिशाली राज्य बनाकर भी छत्रसाल को शान्ति न मिली। दूसरी शक्तियाँ सदा ईर्ष्या की दृष्टि से इनका राज्य देखती रहीं। इसलिए राज्य की रक्षा के लिए इन्हें जीवन भर लड़ना पड़ा। उनकी मृत्यु सन् 1731 ई0 में हुई।

अभ्यास-प्रश्न

1. छत्रसाल का जन्म कब और किस वातावरण में हुआ ?

2. छत्रपति शिवाजी ने छत्रसाल को क्या उपदेश दिया ?
3. छत्रसाल की प्रशंसा में किस कवि ने कविताएँ लिखीं ?
4. औरंगजेब छत्रसाल को क्यों न हरा सका ?

पाठ 15

GID7HX

टीपू सुल्तान

टीपू सुल्तान हैदरअली का पुत्र था और इसका जन्म सन् 1753 ई0 में हुआ था। इसके पिता मैसूर के शासक थे। कुछ लोग समझते हैं कि हैदरअली मैसूर का राजा था। यह बात नहीं है। हैदरअली ने अपने को कभी राजा नहीं बनाया। मैसूर के राजा की मृत्यु के बाद उसने उनके छोटे पुत्र को जिसकी अवस्था तीन-चार वर्ष की थी, राजा घोषित कर दिया और उन्हीं के नाम पर सब काम-काज करता रहा। उसने धीरे-धीरे मैसूर राज्य की सीमा बढ़ा ली थी। कुछ पढ़ा-लिखा न होने पर भी उसको सेना सम्बन्धी अच्छा ज्ञान था। उसका सहायक खांडेराव एक महाराष्ट्री था।

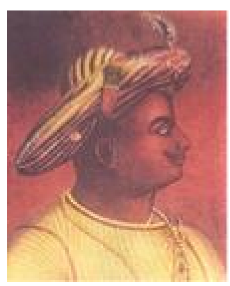

टीपू जब तीस साल का हुआ, हैदरअली की मृत्यु हुई। युद्ध तथा शासन का तब तक उसे बहुत अच्छा ज्ञान हो गया था। उस समय भारत में इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपना राज्य फैला रही थी। हैदर अली कई बार कम्पनी से लड़ा था जिसके कारण टीपू को अंग्रेजों से लड़ने के रंग-ढंग की जानकारी हो गयी थी। इस युद्ध में टीपू ने नये ढंग के आक्रमण का तरीका निकाला था। वह एकाएक बहुत जोरों से बिजली की भाँति आक्रमण करता था और शत्रु के पैर उखड़ जाते थे। हैदरअली स्वयं पढ़ा-लिखा नहीं था परन्तु टीपू की शिक्षा की उसने अच्छी व्यवस्था कर दी थी। अतः टीपू शिक्षित भी था और घुड़सवारी में भी निपुण था।

जिस समय टीपू को पिता की मृत्यु का समाचार मिला वह भारत के पश्चिम मालाबार में अंग्रेजों से लड़ रहा था। उसने लड़ाई छोड़ना ही उचित समझा। वहाँ सभी दरबारियों तथा

मन्त्रियों ने इनको ही सहायता दी और टीपू मैसूर की बड़ी सेना का सेनापति बनाया गया। इसके बाद उसे अंग्रेजों से लड़ाई लड़ने का प्रबन्ध करना था। अंग्रेजों ने मराठों से सन्धि कर ली और टीपू पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में टीपू और अंग्रेजों को पराजित किया। टीपू ने अपनी सहायता के लिए कुछ फ्रेंच सिपाही भी रखे थे जो उन दिनों भारत में थे। अंग्रेजों ने टीपू से सन्धि की प्रार्थना की। इस सन्धि की बातें करने के लिए अंग्रेजों की ओर से एक दल आया और टीपू से अंग्रेजों की सन्धि हो गयी किन्तु अंग्रेजों ने यह सन्धि इसलिए की थी कि हमें समय मिल जाय जिसमें हम और तैयारी कर लें और टीपू की सारी शक्ति को चूर कर डालें। टीपू को इसका ध्यान न रहा। वह समझता था कि मैंने अंग्रेजों को हरा दिया है, मेरी शक्ति उनके बराबर तो है ही। यहीं उसने धोखा खाया। उसने शत्रु की शक्ति का अनुमान ठीक नहीं लगाया। फ्रेंच सैनिकों ने भी टीपू के इस विचार का समर्थन किया। इतना ही नहीं, उन लोगांे ने उसे भड़काया भी था।

उन लोगों का विचार था कि यदि अवसर मिले तो टीपू की सहायता से अंग्रेजों को भारत के दक्षिण से निकालकर स्वयं वहाँ राज्य करें। इन बातों से टीपू का उत्साह बढ़ गया। टीपू ने फ्रांस से कुछ सहायता पाने की आशा की, कुछ जगह पत्र भी लिखा। उसका यही अभिप्राय था कि अंग्रेजों को भारतवर्ष से निकाल दिया जाये। अंग्रेजों को इस बात का पता लग गया और उन्होंने टीपू को समय देना उचित न समझा। उन्होंने टीपू के विरुद्ध सेना भेज दी। इस बार अंग्रेजों और टीपू के बीच कई बार घमासान लड़ाइयाँ हुईं और अन्त में टीपू घिर गया। कुछ दिनों के बाद टीपू लड़ते हुए मारा गया।

टीपू को विजय प्राप्त नहीं हुई, यह उसका दुर्भाग्य था। किन्तु यदि उसे सचमुच सहायता मिली होती तो अंग्रेजों का राज्य भारतवर्ष में शायद दृढ़ न हो पाता और हमारे देश का इतिहास बदल गया होता। यदि वह अंग्रेजों से ले देकर सन्धि कर लेता तो उसे कोई कठिनाई न होती किन्तु उसने ऐसा नहीं किया और इसी कारण अंग्रेज भी उसका नाश करने पर तुले हुए थे।

टीपू ने अपने राज्य में अनेक सुधार किये थे। उस समय वहाँ ऐसी प्रथा थी कि एक स्त्री कई पुरुषों से विवाह कर सकती थी। यह प्रथा उसने बन्द कर दी और नियम बनाया कि जो ऐसा करेगा उसे कठोर दण्ड दिया जायेगा। वह स्वयं शराब नहीं पीता था और उसके राज्य में शराब पीना अपराध था। उसकी पढ़ने-लिखने में रुचि थी और उसका निजी पुस्तकालय था। उन दिनों पुस्तकालय बनाना कठिन था क्योंकि छापाखाना नहीं था और हाथ से लिखी पुस्तकें ही मिलती थीं। उन पुस्तकों से पता चलता है कि साहित्य के साथ-साथ टीपू की कविता, गणित, ज्योतिष, विज्ञान तथा कला में भी रुचि थी।

टीपू का जीवन आमोद-प्रमोद में नहीं बीतता था। सबेरे से सन्ध्या तक वह परिश्रम करता था और चाहता था कि दूसरे भी इसी प्रकार राज्य का काम-काज करें। उसने तिथियाँ सूर्य-वर्षों के अनुसार चलायी थीं। युद्ध-कला पर उसने एक पुस्तक भी लिखी। उसकी स्पष्ट

आज्ञा थी युद्ध के पश्चात् लूटपाट में स्त्रियों को कोई न छुए। अपनी माता का वह बहुत सम्मान करता था और सदा उनकी आज्ञा का पालन करता था।

टीपू ने अपने पिता के सम्मुख युवावस्था में लिख कर प्रतिज्ञा की थी कि मैं झूठ कभी नहीं बोलूँगा, धोखा किसी को नहीं दूँगा, चोरी नहीं करूँगा और जीवन के अन्त तक उसने इस प्रतिज्ञा का पालन किया।

टीपू हिन्दू-मुस्लिम मेल-जोल का पक्षपाती था। उसकी सेना में तथा मन्त्रि मण्डल में सभी धर्मों के अनुयायी थे। हाँ, धोखा देने वालों के साथ उसका व्यवहार कठोर होता था और उन्हें वह दण्ड देता था।

टीपू, वह वीर था जिसने अपने देश को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने का कठिन प्रयत्न किया। उसे सफलता नहीं मिली, किन्तु उसके महान होने में कोई सन्देह नहीं है।

अभ्यास प्रश्न-

1. टीपू सुल्तान कौन था? उसका जन्म कहाँ हुआ था ?
2. टीपू ने अपने राज्य में क्या-क्या सुधार किये ?
3. टीपू ने किन-किन विषयों की पुस्तकें लिखीं ?
4. टीपू ने अपने पिता के समक्ष क्या प्रतिज्ञा की थी ?

पाठ - 16

GIH3JK

राजा राममोहन राय

शमशान घाट पर चिता सजाई जा चुकी थी। एक स्त्री, जिसके पति का निधन हो गया था, उस चिता पर जीवित जलने के लिए तैयार की जा रही थी। उस स्त्री के देवर ने उपस्थित लोगों का विरोध किया कि यह गलत हो रहा है। उसने कहा -

'यह कहाँ की समझदारी है कि पति के मरने पर उसकी पत्नी जीवित चिता में जल जाये या आप लोगों द्वारा जलने के लिए मजबूर कर दी जाये। यह कुरीति है.... अन्याय है और सरासर अत्याचार है।'

पर उस युवक की किसी ने नहीं सुनी। अन्ततः वही हुआ जो समाज चाहता था। स्त्री चिता पर कूद पड़ी और जीवित जल मरी। इस घटना ने युवक के हृदय को पीड़ा से झकझोर दिया। यहीं से इस युवक ने इस कुरीति को समाप्त करने का बीड़ा उठा लिया।

यह दृढ़ निश्चयी, साहसी और समाज सुधारक युवक राममोहन राय था।

जन्मः - 22 मई 1772 ई0 को पश्चिम बंगाल के हुगली जिले के गांव राधानगर

पिताः - रामकान्त राय

माताः - तारिणी देवी

मृत्युः - 27 सितम्बर 1833 ई0 इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल नगर

राम मोहन राय के समाज सुधार सम्बन्द्दी कार्य।

सती प्रथा का विरोध

अन्धविश्वासों का विरोध

बहुविवाह विरोध

बाल विवाह विरोध

जाति प्रथा का विरोध

विधवाओं का पुनर्विवाह

पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति का भाग दिलवाना

धार्मिक सुधार-ईश्वर एक है

स्त्री पुरूष को बराबरी के अधिकार

राममोहन की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही बंगला भाषा में हुई। बाद में एक मौलवी साहब द्वारा भी उन्हें शिक्षा दी गई। इनकी माँ संस्कृत की विदुषी थीं।

राममोहन राय ने पटना में अरबी तथा फारसी की उच्च शिक्षा प्राप्त की। काशी में इन्हांेने संस्कृत का भी अध्ययन किया, इन्होंने अंग्रेजी भाषा को भी मन लगाकर पढ़ा। इन पर एक तरफ तो सूफी मत का प्रभाव था, तो दूसरी तरफ वेदान्त और उपनिषदों के प्रभाव से इनका व्यक्तित्व उदारवादी विचारों से ओत-प्रोत हो गया।

बीच में कुछ समय के लिए राम मोहन राय तिब्बत भी गये। वहाँ उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। इन्होंने जैन धर्म और उसके कल्प सूत्र का भी अध्ययन किया ।

पिता के बुलावे पर ये तिब्बत से वापस आये। थोड़े दिन बाद इनका विवाह कर दिया गया। पारिवारिक जीवन के निर्वाह के लिए इन्हांेने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन क्लर्क के पद पर नौकरी कर ली। अपनी मेहनत एवं ईमानदारी के बल पर ये दीवान जैसे उच्च पद पर पहुँच गये। नौकरी में रहते हुए ही इन्होंने अंग्रेजी, लैटिन व ग्रीक आदि भाषाओं को अच्छी तरह सीख लिया।

राम मोहन राय की आयु अभी 40 वर्ष की थी, इन्होंने नौकरी छोड़ दी। इन्होंने कोलकाता में एक कोठी खरीदी और वहीं से समाज सेवा के कार्य करते रहे।

राममोहन राय ने उदारवादी विचार धारा के लोगों को लेकर ‘आत्मीय सभा’ बनाई। इसका प्रमुख उद्देश्य इस बात का प्रचार करना था ‘ईश्वर एक है।’ पर उनके इस कथन से कट्टरपन्थी लोग नाराज हो गये। वे उनके विरुद्ध तर्क-वितर्क करते थे। राम मोहन राय

उनकी शंकाओं के समाधान के लिए लेख लिखते और उदारवादी दृष्टिकोण के प्रति उन्हें सहमत करते। राममोहन राय ने 'ईश्वर एक है' की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए ब्रह्मसभा की स्थापना की। इसका नाम बाद में बदलकर 'ब्रह्म समाज' कर दिया गया। इसमें भी धर्मों की अच्छी व उदार बातों का समावेश किया गया था।

राममोहन राय ने अपने विचारों को फैलाने के लिए सन् 1821 में 'संवाद कौमुदी' बंगला साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 1882 ई0 में फारसी में मिरा-ए-तुल अखबार भी प्रकाशित किया। वे अंग्रेजी शिक्षा के पक्षधर थे। उनका मानना था कि पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान भी भारतीयों के लिए लाभकारी है। उन्होंने 1825 ई0 में वेदान्त कालेज की स्थापना की, जिसमें भारतीय विद्या के अलावा सामाजिक एवं भौतिक विज्ञान की भी पढ़ाई होती थी।

भारतीय नव जागरण के अग्रदूत के रूप में राजा

राममोहन राय की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने भारतीय धर्म और सभ्यता को अन्धविश्वासों से मुक्त कराने का प्रयास किया। उनका कहना था -

मैं केवल अन्धविश्वासों की आलोचना करता हूँ न कि धर्म की।राजा की उपाधि कैसे मिली

राममोहन राय के समय मुगल शासक कम्पनी से मिलने वाले धन से सन्तुष्ट नहीं था। उसने राम मोहन राय को अपना प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैण्ड के शासक के पास भेजा।

इसी अवसर पर मुगल सम्राट ने उनको 'राजा' की उपाधि दी।

स्वातन्×य प्रेमी राजा राममोहन राय की राजनीति का आधारभूत सिद्धान्त उनका यह विश्वास था कि शासन की क्षमता भारतीयों में किसी से कम नहीं है। उन्होंने प्रशासन में सुधार के लिए आन्दोलन किए। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के विरुद्ध शिकायत लेकर राममोहन राय 8 अप्रैल 1831 ई0 को इंग्लैण्ड पहुँचे। वहीं से वे फ्रांस की राजधानी पेरिस गये। वे फिर इंग्लैण्ड वापस आये। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य खराब होता गया। इंग्लैण्ड के ब्रिस्टल नगर में 62 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। ब्रिस्टल नगर में आज भी उनका स्मारक बना हुआ है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. राजा राममोहन राय ने तिब्बत में किस बारे में अध्ययन किया ?

2. "आत्मीय सभा" में किस विचार धारा के लोग थे ? इसका प्रमुख उद्देश्य क्या था ?

3. ''वेदान्त कालेज'' की स्थापना कब हुई ? इसमें किन-किन विषयों की शिक्षा दी जाती थी?

4. राजा राममोहन राय के काल को क्या कहा जाता है ?

5. कालम 'अ' और कालम 'ब' के वाक्यांशांे को मिलाकर सही वाक्य बनाइए।

अ ब

राजा राममोहन राय का जन्म सन् 1821 में प्रकाशित किया।

पारिवारिक जीवन के निर्वाह के लिये उन्होंनें 22 मई 1772 ई0 को पश्चिम बंगाल के हुगली जिले के राधानगर में हुआ था।

ईश्वर एक है की अवधारणा को स्पष्ट ईस्ट इण्डिया कम्पनी में क्लर्क की

करने के लिए नौकरी कर ली।

''संवाद कौमुदी'' बंगला साप्ताहिक पत्र ''ब्रह्म सभा'' की स्थापना की।

6. सत्य कथन के सामने सही (√) तथा असत्य कथन के सामने गलत (ग) का निशान लगाइए।

Û राजा राममोहन राय की माता विदुषी महिला थीं।

Û राजा राममोहन राय ने सभी कार्य आजादी के लिए किए।

Û मुगल सम्राट ने राममोहन राय को 'राजा' की उपाधि दी।

Û राजा राममोहन राय ने समाज सुधार के अनेक कार्य किए।

7. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

Û काशी में राममोहन राय ने .... का भी अध्ययन किया।

Û ब्रह्मसभा का नाम बदल कर .... कर दिया गया।

Û राजा राममोहन राय का कहना था कि मैं केवल ....की आलोचना करता हँू न कि .... ।

8. निम्न शीर्षकों के आधार पर राजा राममोहन राय पर लेख लिखिए-

जन्म तथा माता-पिता, शिक्षा, समाज सुधार के कार्य।

पाठ -17

FS8R5Z

रानी अवंती बाई

"देश की रक्षा के लिए कमर कसो या चूड़ी पहन कर घर में बैठो। तुम्हें धर्म, ईमान की सौगंध जो इस कागज का सही पता बैरी को दो।"

ये वह शब्द थे जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह का बिगुल बजाने में प्रमुख भूमिका निभाई। वे शब्द, जिन्होंने क्रांति की ज्वाला को फैलाने में समिधा का कार्य किया। वे शब्द, जिन्होंने इतिहास रच दिया। वे शब्द, जो इतिहास में अमर हो गए। यह शब्द थे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में मध्य भारत की प्रमुख सूत्रधार वीरांगना अवंती बाई के, जिनकी अप्रतिम शौर्यगाथा आज भी हम सबको प्रेरित कर रही है।

16 अगस्त, 1831 को मनकेहनी (जिला-सिवनी, मध्य प्रदेश) के जमींदार राव जुझार सिंह के यहां पूरे उत्सव का माहौल था। बधाइयों और शुभकामनाओं के बीच मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं। ढोल-बाजे बज रहे थे। जुझार सिंह जी के यहां एक बहुत प्यारी सी बिटिया ने जन्म लिया था। माता-पिता बिटिया को पाकर खुशी से फूले न समा रहे थे, उनके घर 'अवंती' जो आई थी।

बालिका अवंती बाई की प्रारंभिक शिक्षा मनकेहनी गाँव में ही हुई। उसे बचपन से ही घुड़सवारी और तलवारबाजी का बहुत शौक था। लोग बालिका अवंती की घुड़सवारी और तलवारबाजी को देखते और आश्चर्यचकित हो जाते। जैसे-जैसे बालिका 'अवंती' बड़ी होती गई, उसके साहस और पराक्रम के किस्से आस-पास के क्षेत्रों में फैलने लगे।

विवाह योग्य होने पर पिता जुझार सिंह ने बेटी अवंती बाई का रिश्ता रामगढ़ के राजा लक्ष्मण सिंह के सुपुत्र राजकुमार विक्रमादित्य से कर दिया। विवाह के उपरांत जुझार सिंह की यह साहसी बिटिया रामगढ़ रियासत की कुलवधू बनी। सन् 1850 में राजा लक्ष्मण सिंह की मृत्यु हो जाने पर राजकुमार विक्रमादित्य का रामगढ़ के राजा के रूप में राजतिलक किया गया लेकिन कुछ समय बाद राजा विक्रमादित्य अस्वस्थ रहने लगे। इनके पुत्र अमान सिंह और शेर सिंह अभी बहुत छोटे थे। अतः राज्य की पूरी देखरेख का जिम्मा अवंती बाई पर ही आ गया। ऐसी विषम परिस्थिति में अवंती बाई ने पूरी योग्यता का परिचय देते हुए राजकाज को सँभाला और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा।

उस समय लार्ड डलहौजी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का गवर्नर जनरल था। लार्ड डलहौजी के समय में साम्राज्य विस्तार का कार्य चरम पर था। अपनी 'हड़प नीति' के कारण डलहौजी तमाम राज्यों का अपने साम्राज्य में विलय कर चुका था। जब उसे राजा विक्रमादित्य की अस्वस्थता का पता चला तो उसने रामगढ़ रियासत को 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' के अधीन कर लिया तथा रामगढ़ के राज परिवार को पेंशन दे दी। इस घटना से अवंती बाई अत्यंत व्यथित हो गईं। दुर्भाग्य से इसी दौरान मई 1857 में राजा विक्रमादित्य का स्वर्गवास हो गया और संपूर्ण जिम्मेदारियों का दायित्व अवंती बाई पर आ गया।

सन् 1857 में देश में स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजा तो क्रांतिकारियों का संदेश रामगढ़ भी पहुँचा। रानी अवंती बाई ब्रिटिश शासन से पहले ही अपमान का घूँट पीकर बैठी हुई थीं। उन्होंने अपने आस-पास के सभी राजाओं को क्रांति का संदेश देने के लिए चिट्ठी लिखी जिसके साथ काँच की चूड़ियाँ भी थीं। चिट्ठी में संदेश था-''देश की रक्षा के लिए कमर कसो या चूड़ी पहनकर घर में बैठो''। इस पत्र का व्यापक प्रभाव पड़ा। तमाम देशभक्त राजाओं और जमींदारों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह का झंडा उठा लिया। सर्वत्र क्रांति की ज्वाला फैल गई। रानी अवंती बाई ने अपने राज्य से 'कोर्ट आॅफ वार्ड्स' के अधिकारियों को खदेड़ दिया तथा क्रांति की बागडोर अपने हाथों में ले ली।

इस समय वीरांगना रानी अवंती बाई मध्य भारत की क्रांति का प्रमुख चेहरा बन चुकी थीं। रानी के विद्रोह की सूचना से जबलपुर कमिश्नर मेजर इस्काइन आगबबूला हो गया। उसने रानी को आदेश दिया कि वह मंडला के डिप्टी कलेक्टर से मिलें। रानी ने इस आदेश को नकार दिया तथा युद्ध की तैयारियों में जुट गईं। उन्होंने रामगढ़ के किले की मरम्मत कर उसे सुदृढ़ कराया। मध्यभारत के विद्रोही नेता रानी के नेतृत्व में एकजुट हो रहे थे। रानी ने अपने साथियों के साथ हमला करके घुघरी, रामनगर, बिछिया आदि क्षेत्रों से ब्रिटिश राज का सफाया कर दिया। इसके पश्चात् रानी ने मंडला पर योजनाबद्ध तरीके से आक्रमण कर ब्रिटिश सेना को धूल चटा दी।

इस हार से मंडला का डिप्टी कमिश्नर वाडिंगटन तिलमिला गया तथा किसी भी प्रकार पराजय का बदला लेने की योजना बनाने लगा। उसने अपनी सेना को पुनर्गठित किया तथा रामगढ़ के किले पर हमला बोल दिया। ब्रिटिश सेना संख्या बल और युद्ध सामग्री में रानी की सेना से कई गुना ताकतवर थी। रानी ने इस स्थिति को भाँपकर किले से बाहर निकलकर देवहार गढ़ पहाड़ियों की ओर प्रस्थान किया। रामगढ़ किले को बुरी तरह ध्वस्त करने के बाद अंग्रेज सेना रानी को खोजते हुए देवहार गढ़ की पहाड़ियों की ओर बढ़ चली। अंग्रेजों ने रानी के पास आत्मसमर्पण का संदेश भिजवाया। रानी ने दृढ़तापूर्वक ललकारते हुए कहा-''मुझे यह संदेश अस्वीकार है। मैं युद्ध भूमि में लड़ते-लड़ते अपने प्राण दे दूँगी लेकिन अंग्रेजांे के आगे नहीं झुकूँगी।''

रानी के उत्तर से तिलमिलाए वाडिंगटन ने रानी को चारों ओर से घेर कर धावा बोल दिया। कई दिन तक रानी और उनकी जाँबाज सेना अंग्रेजों को लोहे के चने चबवाती रही पर संख्या बल और युद्ध सामग्री कम होने के कारण धीरे-धीरे रानी अकेली पड़ती गईं। युद्ध के दौरान रानी के बाएँ हाथ में गोली लगी और उनकी बंदूक छूटकर नीचे गिर गई। निहत्थी रानी पर अंग्रेज चारों ओर से टूट पड़े। अपने आपको चारों ओर से घिरता देख वीरांगना अवंती बाई ने तलवार लेकर यह कहते हुए अपने सीने में उतार ली-''हमारी रानी दुर्गावती ने जीते-जी बैरी के हाथ से न छुए जाने का प्रण लिया था, इसे न भूलना।''

मृत्यु शय्या पर लेटते हुए इस महान वीरांगना ने अंग्रेज अफसर से कहा-''ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को मंैने ही विद्रोह के लिए उकसाया है। प्रजा बिल्कुल निर्दोष है। उसे पीड़ित मत करना।'' ऐसा कहकर वीरांगना अवंती बाई ने हज़ारों लोगों को अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहार और फाँसी से बचा लिया।

धन्य है यह वीरांगना, जिसने एक अतुलनीय उदाहरण प्रस्तुत कर 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में निरंतर लड़ते हुए 20 मार्च, 1858 को अपने प्राणों की आहुति दे दी। इनका जीवन और उज्ज्वल चरित्र हमें सदैव राष्ट्र निर्माण, शौर्य, बलिदान और देशभक्ति की प्रेरणा देता रहेगा।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. अवंती के जन्म पर उनके पिता राव जुझार सिंह ने किस प्रकार खुशियाँ मनाईं ?

2. अवंती बाई का विवाह कब और किसके साथ हुआ ?

3. अवंती बाई ने सन् 1857 में स्वतंत्रता संग्राम के समय आस-पास के राजाओं को क्या संदेश भेजा ?

4. रानी अवंती बाई ने अंग्रेजों के आत्मसमर्पण के संदेश को अस्वीकार कर दिया। इससे रानी की किस विशेषता का पता चलता है ?

पाठ - 18

महर्षि दयानन्द

शिवरात्रि का पर्व है। गाँव की सीमा पर स्थित शिवालय में आज भक्तों की बहुत भीड़ है। दीपकों के प्रकाश से सारा देवालय जगमगा रहा है। भक्तांे की मण्डली भाव-विभोर होकर भजन-कीर्तन में निमग्न है। लोगों का विश्वास है कि आज दिन भर निराहार रहकर रात्रि जागरण करने से विशेष पुण्य प्राप्त होता है।

जन्म - 1824 ई0

जन्म स्थान - गुजरात का टंकारा गांव

देहान्त - 1883 ई0

कुछ समय तक भजन-कीर्तन का क्रम चलता रहा परन्तु जैसे-जैसे रात्रि बीतने लगी लोगों का उत्साह ठंडा पड़ने लगा। कुछ उठकर अपने घरों को चले गए, जो रह गए वे भी अपने आपको सँभाल न सके। आधी रात होते-होते वहीं सो गए। ढोल-मंजीरे शान्त हो गए। निस्तब्ध सन्नाटे में एक बालक अभी भी जाग रहा था। उसकी आँखों में नींद कहाँ अपलक दृष्टि से वह अब भी शिव-प्रतिमा को निहार रहा था। तभी उसकी दृष्टि एक चूहे पर पड़ी जो बड़ी सतर्कतापूर्वक इधर-उधर देखते हुए शिवलिंग की ओर बढ़ रहा था। शिवलिंग के पास

पहुँचकर पहले तो वह उस पर चढ़ायी गयी भोग की वस्तुओं को खाता रहा, फिर सहसा मूर्ति के ऊपर चढ़कर आनन्दपूर्वक घूमने लगा जैसे हिमालय की चोटी पर पहुँच जाने का गौरव प्राप्त हो गया हो।

पहले तो बालक का मन हुआ कि वह चूहे को डराकर दूर भगा दे परन्तु दूसरे ही क्षण उनके अन्तर्मन को एक झटका सा लगा, श्रद्धा और विश्वास के सारे तार झनझनाकर जैसे एक साथ टूट गए। इस विचार ने बालक के जीवन-दर्शन को ही बदल डाला। उसने ईश्वर की खोज का संकल्प लिया। यह बालक था मूलशंकर। आगे चलकर यही बालक महर्षि दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मूलशंकर के पिता का नाम कर्षन जी त्रिवेदी और माता का नाम शोभाबाई था। उनके पिता की इच्छा थी कि उनका पुत्र पढ़-लिखकर सद्गृहस्थ बने और जमींदारी तथा लेन-देन में उनकी मदद करे। परन्तु मूलशंकर का मन अध्ययन और एकान्त चिन्तन में लगता था। मूलशंकर की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत में हुई। कुशाग्र बुद्धि तथा विलक्षण स्मरण शक्ति के कारण थोड़े ही दिनों में उन्हें संस्कृत के बहुत से स्तोत्र-मन्त्र और श्लोक याद हो गए।

जब वे सोलह वर्ष के थे तभी उनके जीवन में दो ऐसी घटनाएँ घटीं जिसने मूलशंकर के मन में वैराग्य-भावना को दृढ़ बना दिया। उनकी छोटी बहन की हैजा से मृत्यु हो गई। मूलशंकर डबडबायी आँखों से अपनी प्यारी बहन को मृत्यु के मुँह में जाते असहाय देखते रहे। उन्हें लगा कि जीवन कितना निरुपाय है! संसार कितना मिथ्या!

तीन वर्ष पश्चात् सन् 1843 में मूलशंकर के चाचा की मृत्यु हो गई। मूलशंकर को चाचा से अपार स्नेह था परन्तु मृत्यु ने आज उनके इस स्नेह-बन्धन को भी तोड़ दिया। संसार की निस्सारता ने एक बार फिर उन्हें झकझोर दिया। वैराग्य का नन्हा पौधा बढ़कर एक विशाल वृक्ष बन गया।

उन्होंने उसी समय दृढ़ संकल्प किया कि मैं घर-गृहस्थी के बन्धन में नहीं पड़ूँगा और एक दिन मूलशंकर घर के सभी लोगों की दृष्टि बचाकर चुपचाप घर से निकल पड़े। इस समय उनकी अवस्था मात्र 21 वर्ष की थी। चलते-चलते कई दिनों के बाद वे सायले (अहमदाबाद) गाँव में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक ब्रह्मचारी जी से दीक्षा ग्रहण की और अब वे मूलशंकर से शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी बन गये। कुछ दिन यहाँ रह कर वे साधुओं से योग क्रियाएँ सीखते रहे किन्तु अनन्त सत्य की खोज में निकले शुद्ध चैतन्य का मन सायले ग्राम

में बंधकर न रह सका। युवा संन्यासी की ज्ञान पिपासा उन्हें नर्मदा के किनारे-किनारे दूर तक ले गयी। एक दिन उनकी भेंट दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से हुई। वे बहुत विद्वान एवं उच्च कोटि के संन्यासी थे। शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी उनके पास पहुँच गये और उनसे संन्यास की दीक्षा देने का अनुरोध किया। पहले तो गुरु ने अपने शिष्य की युवावस्था को देखते हुए संन्यास की दीक्षा देने से इनकार किया किन्तु दूसरे ही क्षण उन्होंने शुदध चैतन्य ब्रह्मचारी की आँखों में झाँककर उनकी वैराग्य भावना को पहचान लिया। उन्होंने विधिवत् उन्हें संन्यास की दीक्षा दी। अब मूलशंकर शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी से संन्यासी बनकर दयानन्द सरस्वती हो गये।

दीक्षा के उपरान्त स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना सारा समय विद्याध्ययन और योगाभ्यास में लगाया। अहंकार को त्यागकर शिष्य भाव से उन्हें जिससे जो कुछ भी प्राप्त हुआ उसे बड़ी कृतज्ञता से ग्रहण किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने द्वारिका के स्वामी महात्मा शिवानन्द से योग विद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

मथुरा के स्वामी विरजानन्द के विमल यश और पाण्डित्य की चर्चा सुनकर वे मथुरा जा पहुँचे। स्वामी विरजानन्द के चरणों में बैठकर दयानन्द ने 'अष्टाध्यायी महाभाष्य' 'वेदान्त सूत्र' आदि अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। जब वे पढ़ने बैठते तो तर्कयुक्त प्रश्नों की झड़ी लगा देते थे। उनकी लगन और निष्ठा से प्रभावित होकर गुरु विरजानन्द ने कहा -

दयानन्द ! आज तक मैंने सैकड़ों विद्यार्थियों को पढ़ाया पर जैसा आनन्द और जो उत्साह मुझे तुम्हें पढ़ाने में मिलता है वह कभी नहीं मिला। तुम्हारी तर्कशक्ति, अप्रतिम और स्मरणशक्ति अलौकिक है। तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी प्रतिभा का लाभ देश के जन को मिले यही मेरी आकांक्षा और शुभकामना है।

स्वामी दयानन्द ने गुरु की इस आकांक्षा को जीवन भर गाँठ बाँधकर रखा। उन्हें गुरु के वे आदेश वाक्य भी प्रतिक्षण सुनायी देते रहे जो उन्होंने विद्याध्ययन की समाप्ति पर उन्हें अपने आश्रम से विदा करते समय कहे थे। उनका आदेश था - वत्स दयानन्द ! संसार से भागकर जंगलों में जाकर एकान्त साधना करने में संन्यास की पूर्णता नहीं है। संसार के बीच रह कर दीन-दुखियों की सेवा करना, अशान्त जीवन में शान्ति का विस्तार करते हुए दोष मुक्त जीवन को बिताना ही सच्ची साधु प्रवृत्ति है। जाओ, समाज के बीच रहकर अनेक कुसंस्कारों और अंधविश्वासों से खण्ड-खण्ड हो रहे समाज का उद्धार करो, उसे नयी चेतना दो, नया जीवन दो।

स्वामी दयानन्द ने आडम्बरों का जीवन भर विरोध किया। इस संदर्भ में उन्होंने एक महान धर्मग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा। जिसमें धर्म, समाज, राजनीति, नैतिकता एवं शिक्षा पर

उनके संक्षिप्त विचार दिये गये हैं। स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण एवं जीवन दर्शन को संक्षेप में इस उद्धरण से समझा जा सकता है-

कोई भी सद्गुण सत्य से बड़ा नहीं है। कोई भी पाप झूठ से अधम नहीं है। कोई ज्ञान भी सत्य से बड़ा नहीं है इसलिए मनुष्य को सदा सत्य का पालन करना चाहिए।

धर्म के नाम पर मानव समाज का भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों में बँटा होना उन्हें ईश्वरीय नियम के प्रतिकूल लगता था। लोगों को उपदेश देते हुए प्रायः कहा करते थे -

परमात्मा के रचे पदार्थ सब प्राणी के लिए एक से हैं। सूर्य और चन्द्रमा सब के लिए समान प्रकाश देते हैं। वायु और जल आदि वस्तुएँ सबको एक सी ही दी गयी हैं। जैसे ये पदार्थ ईश्वर की ओर से सब प्राणियों के लिए एक से हैं और समान रूप से लाभ पहुँचाते हैं वैसे ही परमेश्वर प्रदत्त धर्म भी सब मनुष्यों के लिए एक ही होना चाहिए।

भारतीय समाज को वेद के आदर्शों के अनुरूप लाने एवं भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने हेतु उन्होंने 1875 में आर्य समाज की मुम्बई में स्थापना की। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य सभी मनुष्यों के शारीरिक, आध्यात्मिक और सामाजिक स्तर को ऊपर उठाना था।

स्वामी दयानन्द ने प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने वेदों और संस्कृत साहित्य के अध्ययन पर बल दिया। तत्कालीन समाज में महिलाओं की गिरती हुई स्थिति का कारण उन्हें उनका अशिक्षित होना लगा। फलतः उन्होंने नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया।

स्वामी दयानन्द ने पर्दा प्रथा तथा बाल विवाह जैसी कुरीतियों का घोर विरोध किया। उन्होंने विधवा विवाह और पुनर्विवाह की प्रथा का समर्थन किया। समाज में व्याप्त वर्ण-भेद, असमानता और छुआ-छूत की भावना का भी खुलकर विरोध करते हुए कहा -

''जन्म से मनुष्य किसी जाति विशेष का नहीं होता बल्कि कर्म के आधार पर होता है।''

स्वामी दयानन्द ने हिन्दी भाषा को राज भाषा के रूप में मान्यता दिलाने का पूरा प्रयास किया। यद्यपि वे संस्कृत के विद्वान थे किन्तु उन्होंने हिन्दी में पुस्तकें लिखीं। संस्कृत भाषा और धर्म को ऊँचा स्थान दिलाने के लिए उन्होंने हिन्दी भाषा को प्रतिष्ठित किया।

कोई चाहे कुछ भी करे, देशी राज्य ही सर्वश्रेष्ठ है। विदेशी सरकार सम्पूर्ण रूप से लाभकारी नहीं हो सकती, फिर चाहे वे धार्मिक पूर्वाग्रह और जातीय पक्षपात से मुक्त तथा पैतृक न्याय और दया से अनुप्राणित ही क्यों न हो।

- दयानन्द सरस्वती (सत्यार्थप्रकाश)

स्वामी दयानन्द समाज सुधारक और आर्य संस्कृति के रक्षक थे। मनुष्य मात्र के कल्याण की कामना करने वाले महर्षि दयानन्द का जीवनदीप सन् 1883 की कार्तिक अमावस्या को सहसा बुझ गया किन्तु उस दीपक का प्रकाश उनके कार्यों और विचारों के रूप में आज भी फैला है।

स्वामी दयानन्द के विषय में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने कहा था -

स्वामी दयानन्द 19 वीं शताब्दी में भारत के पुनर्जागरण के प्रेरक व्यक्ति थे। उन्होंने भारतीय समाज के लिए एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिस पर चलकर भारतीय समाज समुन्नत किया जा सकता है।

पारिभाषिक शब्दावली

निस्तब्ध - निश्चेष्ट

निस्सारता - सारहीनता

अभ्यास-प्रश्न

1. संन्यास ग्रहण करने पर मूलशंकर किस नाम से पुकारे जाने लगे ?

2. गुरु विरजानन्द ने स्वामी दयानन्द को क्या उपदेश दिया था ?

3. आर्य समाज की स्थापना किस उद्देश्य को लेकर की गयी थी ?

4. दयानन्द सरस्वती के समाज सुधार सम्बन्धी कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

5. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(क) महर्षि दयानन्द का जन्म .... में हुआ था।

(ख) मूलशंकर संन्यास की दीक्षा लेने के पश्चात् .... कहलाये।

(ग) स्वामी दयानन्द ने द्वारिका के स्वामी .... से योग विद्या का ज्ञान प्राप्त किया।

(घ) आर्य समाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य सभी मनुष्यों के ....और .... स्तर को ऊपर उठाना था।

6. सही (√) और गलत (ग्) का निशान लगाइए:-

(अ) मूलशंकर संन्यास की दीक्षा लेने के पश्चात् स्वामी दयानन्द सरस्वती कहलाये। ( )

(ब) स्वामी दयानन्द ने दिल्ली में आर्य समाज की स्थापना की। ( )

(स) स्वामी दयानन्द ने पर्दा प्रथा तथा बाल-विवाह जैसी कुरीतियों का विरोध किया। ( )

(द) स्वामी दयानन्द का जीवनदीप 1885 में बुझ गया। ( )

7. महर्षि दयानन्द सरस्वती के किन-किन गुणों से आप प्रभावित हैं ? उन गुणों को स्वयं में कैसे विकसित करेंगे।

8. स्वामी दयानन्द के जीवन दर्शन को संक्षेप में वर्णित कीजिए।

पाठ - 19

FSR19A

रामकृष्ण परमहंस

"मैं तुम्हें सत्य बताता हूँ। संसार में तुम्हारे रहने से कोई बुराई नहीं है। किंतु अपने मन को भगवान की ओर मोड़ दो, अन्यथा तुम सफल नहीं हो पाओगे। एक हाथ से सांसारिक काम-काज करो और दूसरे से भगवान को पकड़े रहो। जब तुम्हारा सांसारिक काम-काज पूरा हो जायेगा तो भगवान को पकड़कर ही रहोगे।"-रामकृष्ण परमहंस

भारत की पुण्यभूमि पर अनेकों तेजस्वी महापुरुषों का जन्म हुआ है। ऐसे ही मानवता व विचारों की अनवरत धारा बहाने वाले स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म 18 फरवरी, 1836 को बंगाल प्रांत के एक छोटे से गाँव कामारपुकुर में हुआ था। यह कोलकाता से सत्तर मील दूर पश्चिम में है। इनके बचपन का नाम

गदाधर था। पिता खुदीराम और माता चंद्रमणि थीं। पिता धर्मपरायण और सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। परिवार बहुत गरीब था, लेकिन इनमें ईश्वर के प्रति अटूट आस्था, अपार श्रद्धा एवं प्रबल प्रेम था। यही समस्त गुण रामकृष्ण परमहंस में भी व्याप्त थे।

सत्रह वर्ष की आयु में वे कोलकाता आए। यहाँ उन्होंने अनुभव किया कि सभी प्रकार के सांसारिक ज्ञान का लक्ष्य केवल भौतिक उन्नति ही है। अतः उन्होंने मन ही मन संकल्प किया कि वे अपना जीवन केवल आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि में लगाएँगे जिससे शाश्वत शांति की प्राप्ति निश्चित रूप से हो सके।

अल्प समय के भीतर ही वे दक्षिणेश्वर स्थित काली मंदिर के पुजारी बन गए। रामकृष्ण दिन-रात साधना में लीन रहते। इनकी भक्ति को देखकर सभी आश्चर्य करते थे। रामकृष्ण दैवी शक्ति की भक्ति 'माँ' के रूप में करते थे। वे एक बच्चे की भाँति माँ की याद में तड़पते और रुदन करने लगते थे। इसी भक्ति के कारण वे पूरे गाँव में प्रसिद्ध थे। दूर-दूर से लोग उनके दर्शन को आते थे।

इसी समय रामकृष्ण को गुरु के रूप में एक महान संत तोताराम जी मिले, जिनके सानिध्य में इन्हें दैवी दर्शन एवं ज्ञान की प्राप्ति हुई। अब वे शाश्वत शांति की अवस्था में थे। संत तोताराम जी ने रामकृष्ण को अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण करने में समर्थ बना दिया। इनका विवाह शारदा देवी से हुआ था।

रामकृष्ण जी ने अपनी आध्यात्मिक साधना के बल पर अनेक सिद्धियों को प्राप्त किया। एक बार एक व्यक्ति ने किसी महात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए रामकृष्ण से कहा कि-"वह महात्मा खड़ाऊँ से नदी पार कर जाते हैं। यह बड़े आश्चर्य का विषय है।" रामकृष्ण परमहंस धीरे से मुस्कराए और बोले,

"इस सिद्धि का मूल्य केवल दो पैसे है। दो पैसों से साधारण व्यक्ति नाव द्वारा नदी पार कर लेता है। इस सिद्धि से केवल दो पैसों का लाभ होता है। अतः इस प्रकार की सिद्धि से क्या लाभ है ? एक महान विचारक व उपदेशक के रूप में उन्होंने बहुत से लोगों को प्रेरित किया।

रामकृष्ण परमहंस का महाप्रयाण 16 अगस्त, 1886 को हुआ। किंतु इसके पूर्व ही उन्होंने नवयुवकों के एक दल को अपने आध्यात्मिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए विशेष रूप से शिक्षित कर दिया था। इन्हीं नवयुवकों में से एक परम तेजस्वी विवेकानंद जी ने अपने सहयोगियों के साथ 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। विवेकानंद जी के नेतृत्व में उन सबने रामकृष्ण परमहंस के संदेशों का भारत तथा विश्व के अन्य देशों में प्रचार-प्रसार किया तथा विश्व पटल पर भारत को गौरवान्वित किया। इस मिशन को वर्ष 1998 में भारत सरकार द्वारा 'गांधी शांति पुरस्कार' से सम्मानित किया जा चुका है।

रामकृष्ण परमहंस के कई ऐसे "अनमोल वचन" हैं जो मनुष्य को जीवन का सही मार्ग दिखाते हैं, यथा-

स कर्म के लिए भक्ति का आधार होना आवश्यक है।

स उसका जन्म वृथा है जो दुर्लभ मानव जनम पाकर भी इसी जीवन में भगवान को पाने की चेष्टा नहीं करता।

स जिसने आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त कर लिया, उस पर काम और लोभ का विष नहीं चढ़ता।

स जब हवा चलने लगे तो पंखा छोड़ देना चाहिए परंतु ईश्वर की कृपा दृष्टि जब होने लगे तो प्रार्थना तपस्या नहीं छोड़नी चाहिए।

स यदि तुम ईश्वर की दी गई शक्तियों का सदुपयोग नहीं करोगे तो वह अधिक नहीं देगा अर्थात् ईश-कृपा के योग्य बनने के लिए भी पुरुषार्थ चाहिए।

स पानी और उसका बुलबुला एक ही चीज है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा एक ही चीज है।

स मैले शीशे में सूर्य की किरणों का प्रतिबिंब नहीं पड़ता, उसी प्रकार जिनका अंतःकरण मलिन और अपवित्र है उनके हृदय में ईश्वर के प्रकाश का प्रतिबिंब नहीं पड़ सकता।

स मैं भौतिक सुखों को प्रदान करने वाली विद्या नहीं चाहता हूँ। मैं उस विद्या को चाहता हूँ जिससे हृदय में ज्ञान का उदय होता है।

स्वामी जी आचरण की शुद्धता पर बल देते थे। उन्होंने अपने आचरण से समाज को सदैव दिशा प्रदान की।वह जातिवाद एवं धार्मिक पक्षपात के मुखर विरोधी थे। इनका अभिमत था कि निःस्वार्थ कर्म,

आध्यात्मिक गुण,ऊँचे आदर्श,दया, पवित्रता,प्रेम और भक्ति ही मनुष्य को चेतना के ऊँचे स्तर पर ले जाती है।

रामकृष्ण परमहंस जी का अंतर्मन अत्यंत निश्छल, सहज व विनयशील था। इनकी बाल सुलभ सरलता और मंत्रमुग्ध मुस्कान से हर कोई आकर्षित हो जाता था। रामकृष्ण परमहंस द्वारा स्थापित 'बेलूरमठ' हम भारतीयों की प्रेरणा का जीवंत रूप है। आज भी रामकृष्ण जी के विचार व उपदेश हम सभी भारतवासियों को अनुप्राणित कर रहे हैं।

उनके बारे में गांधी जी का अभिमत था- "रामकृष्ण परमहंस का जीवन चरित्र धर्म के आचरण का व्यावहारिक विवरण है। उनका जीवन हमारे लिए ईश्वर की शक्ति प्रदान करता है। उनका जीवन अहिंसा का साकार पाठ है।"

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

2. सत्रह वर्ष की आयु में कोलकाता आने पर रामकृष्ण ने क्या अनुभव किया ?

3. रामकृष्ण की भक्ति देखकर लोग क्यों आश्चर्य करते थे ?

4. रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख उपदेशों का वर्णन कीजिए।

5. रामकृष्ण परमहंस के व्यक्तित्व की विशेषताओं को अपने शब्दों में लिखिए।

पाठ - 20

FT1EAX

स्वामी विवेकानन्द

"यदि कोई व्यक्ति यह समझता है कि वह दूसरे धर्मों का विनाश कर अपने धर्म की विजय कर लेगा, तो बन्धुओं ! उसकी यह आशा कभी भी पूरी नहीं होने वाली। सभी धर्म हमारे अपने हैं, इस भाव से उन्हें अपनाकर ही हम अपना और सम्पूर्ण मानवजाति का विकास कर पायेंगे। यदि भविष्य में कोई ऐसा धर्म उत्पन्न हुआ जिसे सम्पूर्ण विश्व का धर्म कहा जाएगा तो वे अनन्त और निर्बाध होगा। वह
धर्म न तो हिन्दू होगा, न मुसलमान, न बौद्ध, न ईसाई अपितु वह इन सबके मिलन और सामंजस्य से पैदा होगा।"

ये ही वो शब्द हैं, जिन्होंने विश्वमंच पर भारत की सिरमौर छवि को प्रस्तुत किया और संसार को यह मानने को विवश कर दिया कि भारत वास्तव में विश्वगुरु है। क्या आप जानते हैं, ये शब्द किसने कहे थे ? ये शब्द 11 सितम्बर सन् 1893 को शिकागो (अमेरिका) में आयोजित विश्वधर्मसभा के मंच पर स्वामी विवेकानन्द ने कहे थे ।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी को कोलकाता में हुआ था। इनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त तथा माता का नाम भुवनेश्वरी देवी था। इनके बचपन का नाम नरेन्द्र था।

घर का वातावरण अत्यन्त धार्मिक था। दोपहर में सारे परिवार की स्त्रियाँ इकट्ठा होतीं और कथा-वार्ता कहतीं। नरेन्द्र शांत होकर बड़े चाव से इन कथाओं को सुनता। बचपन में ही नरेन्द्र ने रामायण तथा महाभारत के अनेक प्रसंग तथा भजन कीर्तन कण्ठस्थ कर लिये थे।

नरेन्द्र की प्राथमिक शिक्षा घर पर ही हुई। इसके उपरान्त वे विभिन्न स्थानों पर शिक्षा प्राप्त करने गए। कुश्ती, बॉक्सिंग, दौड़, घुड़दौड़, तैराकी, व्यायाम उनके शौक थे। उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। सुन्दर व आकर्षक व्यक्तित्व के कारण लोग उन्हें मन्त्र-मुग्ध होकर देखते रह जाते। घर पर पिता की विचारशील पुरुषों से चर्चा होती। नरेन्द्र उस चर्चा में भाग लेते और अपने विचारों से विद्वत्मण्डली को आश्चर्य चकित कर देते। उन्होंने बी0ए0 तक शिक्षा प्राप्त की। इस समय तक उन्होंने पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का विस्तृत अध्ययन कर लिया था। दार्शनिक विचारों के अध्ययन से उनके मन में सत्य को जानने की इच्छा जागने लगी।

कुछ समय पश्चात् नरेन्द्र ने अनुभव किया कि उन्हें बिना योग्य गुरु के सही मार्गदर्शन नहीं मिल सकता है क्योंकि जहाँ एक ओर उनमें आध्यात्मिकता के प्रति जन्मजात रुझान था वहीं उतना ही प्रखर बुद्धियुक्त तार्किक स्वभाव था। ऐसी परिस्थिति में वे ब्रह्म समाज की ओर आकर्षित हुए। नरेन्द्र नाथ का प्रश्न था - "क्या ईश्वर का अस्तित्व है ?" इस प्रश्न के समाधान के लिए वे अनेक व्यक्तियों से मिले किन्तु समाधान न पा सके। इसी बीच उन्हें ज्ञात हुआ कि कोलकाता के समीप दक्षिणेश्वर में एक तेजस्वी साधु निवास करते हैं।

अपने चचेरे भाई से भी नरेन्द्र ने इन साधु के बारे में सुना। वे मिलने चल दिए। वे साधु थे स्वामी रामकृष्ण परमहंस। नरेन्द्र ने उनसे पूछा - "महानुभाव, क्या आपने ईश्वर को देखा है ?" उत्तर मिला "हाँ मैंने देखा है, ठीक ऐसे ही जैसे तुम्हें देख रहा हूँ ,बल्कि तुमसे भी अधिक स्पष्ट और प्रगाढ़ रूप में।" नरेन्द्र इस उत्तर पर मौन रह गये। उन्होंने मन ही मन सोचा - चलो कोई तो ऐसा मिला जो अपनी अनुभूति के आधार पर यह कह सकता है कि ईश्वर का अस्तित्व है। नरेन्द्र नाथ का संशय दूर हो गया। शिष्य की आध्यात्मिक शिक्षा का श्री गणेश यहीं से हुआ।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने इस उद्विग्न, चंचल और हठी युवक में भावी युगप्रवर्तक और अपने सन्देशवाहक को पहचान लिया था। उन्होंने टिप्पणी की -

"नरेन (नरेन्द्र) एक दिन संसार को आमूल झकझोर डालेगा।"

गुरु रामकृष्ण ने अपने असीम धैर्य द्वारा इस नवयुवक भक्त की क्रान्तिकारी भावना का शमन कर दिया। उनके प्यार ने नरेन्द्र को जीत लिया और नरेन्द्र ने भी गुरु को उसी प्रकार भरपूर प्यार और श्रद्धा दी।

अपनी महासमाधि से तीन-चार दिन पूर्व श्री रामकृष्ण परमहंस ने अपनी सारी शक्तियाँ नरेन्द्र को दे डालीं और कहा -

"मेरी इस शक्ति से, जो तुममें संचारित कर दी है, तुम्हारे द्वारा बड़े-बड़े कार्य होंगे और उसके बाद तुम वहाँ चले जाओगे जहाँ से आये हो"

रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् नरेन्द्र परिव्राजक के वेश में मठ छोड़कर निकल पड़े। उन्होंने सम्पूर्ण भारत में घूम-घूम कर रामकृष्ण के विचारों को फैलाना प्रारम्भ कर दिया। वे

भारतीय जनता से मिलते। उनके सुख दुःख बाँटते। दलितांे शोषितों के प्रति उनके मन में विशेष करुणा का भाव था। यह समाचार पढ़कर कि कोलकाता में एक आदमी भूख से मर गया, द्रवित स्वर में वे पुकार उठे "मेरा देश, मेरा देश! छाती पीटते हुए उन्होंने स्वयं से प्रश्न किया - "धर्मात्मा कहे जाने वाले हम संन्यासियों ने जनता के लिए क्या किया है ?" इसी समय उन्होंने अपना पहला कर्तव्य तय किया - "दरिद्रजन की सेवा, उनका उद्धार" उनके द्रवित कण्ठ से यह स्वर फूटा " यदि दरिद्र पीड़ित मनुष्य की सेवा के लिए मुझे बार-बार जन्म लेकर हजारों यातनाएँ भी भोगनी पड़ीं, तो मैं भोगँूगा।"

स्वामी जी ने अपने जीवन के कुछ उद्देश्य निर्धारित किये। सबसे बड़ा कार्य धर्म की पुनसर्थापना का था। उस समय भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में बुद्धिवादियों की धर्म से श्रद्धा उठती जा रही थी। अतः आवश्यक था धर्म की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करना जो मानव जीवन को सुखमय बना सके। दूसरा कार्य था हिन्दू धर्म और संस्कृति पर हिन्दुओं की श्रद्धा जमाए रखना जो उस समय यूरोप के प्रभाव में आते जा रहे थे। तीसरा कार्य था भारतीयों को उनकी संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक परम्पराओं का योग्य उत्तराद्दिकारी बनाना। स्वामी जी की वाणी और विचारों से भारतीयों में यह विश्वास जाग्रत हुआ कि उन्हें किसी के सामने मस्तक झुकाने अथवा लज्जित होने की आवश्यकता नहीं।

लगभग तीन वर्ष तक स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर प्रत्यक्षतः ज्ञान प्राप्त किया। इस अवधि में अद्दिकांशतः वे पैदल ही चले। उन्होंने देश की अवनति के कारणों पर मनन किया और उन साधनों पर विचार किया जिनसे कि देश का पुनः उत्थान हो सके। भारत की दरिद्रता के निवारण हेतु सहायता प्राप्ति के उद्देश्य से उन्होंने पाश्चात्य देशों की यात्रा का निर्णय लिया ।

सन् 1893 ई0 में शिकागो (अमेरिका) में सम्पूर्ण विश्व के धर्माचार्यांे का सम्मेलन होना निश्चित हुआ। स्वामी जी के हृदय में यह भाव जाग्रत हुआ कि वे भी इस सम्मेलन में जाएँ। खेतरी नरेश, जो कि उनके शिष्य थे, ने स्वामी जी की इस भावना की पूर्ति में सहयोग किया। खेतरी नरेश के प्रस्ताव पर उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द धारण किया और अनेक प्रचण्ड बाधाओं को पारकर इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए। निश्चित समय पर धर्म सभा का कार्य प्रारम्भ हुआ । विशाल भवन में हजारों नर-नारी श्रोता उपस्थित थे। सभी वक्ता अपना भाषण लिखकर लाए थे जबकि स्वामी जी ने ऐसी कोई तैयारी न की थी। धर्म सभा में स्वामी जी को सबसे अन्त में बोलने का अवसर दिया गया क्योंकि वहाँ न कोई उनका समर्थक था, न उन्हें कोई पहचानता था।

स्वामी जी ने ज्यों ही श्रोताओ को सम्बोधित किया "अमेरिका वासी बहनों और भाइयों! त्यों ही सारा सभा भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं। पूर्व के सभी वक्ताओं ने सम्बोधन में कहा था 'अमेरिका वासी महिलाओं एवं पुरुषों। स्वामी जी के अपनत्व भरे सम्बोधन ने सभी श्रोताओं का हृदय जीत लिया। तालियाँ थमने

पर स्वामी जी ने व्याख्यान प्रारम्भ किया। अन्य सभी वक्ताओं ने जहाँ अपने-अपने धर्म और ईश्वर की श्रेष्ठता सिद्ध करने की कोशिश की, वह ीं स्वामी विवेकानन्द ने सभी धर्मांे को एकाकार करते हुए घोषणा की ''लड़ो नहीं साथ चलो। खण्डन नहीं, मिलो। विग्रह नहीं, समन्वय और शांति के पथ पर बढ़ो।' इस भाषण से उनकी ख्याति सम्पूर्ण विश्व में फैल गयी। अमेरिका के अग्रणी पत्र दैनिक हेराल्ड ने लिखा ''शिकागो धर्म सभा में विवेकानन्द ही सर्वश्रेष्ठ व्याख्याता हैं।'' प्रेस ऑफ अमेरिका ने लिखा ''उनकी वाणी में जादू है, उनके शब्द हृदय पर गम्भीरता से अंकित हो जाते हैं।''

स्वामी जी की विदेश यात्रा के कई उद्देश्य थे। एक तो वे भारतवासियों के इस अन्धविश्वास को तोड़ना चाहते थे कि समुद्र यात्रा पाप है, तथा विदेशियों के हाथ का अन्न-जल ग्रहण करने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है। दूसरा यह कि भारत में अंग्रेजी प्रभाव वाले लोगों को वे यह भी दिखाना चाहते थे कि भारतवासी भले ही अपनी संस्कृति का आदर करें या न करें, पश्चिम के लोग जरूर उससे प्रभावित हो सकते हैं।

शिकागो सम्मेलन के बाद जनता के विशेष अनुरोध पर स्वामी जी तीन वर्ष अमेरिका और इंग्लैण्ड में रहे। इस अवधि में भाषणों, वक्तव्यों, लेखों, वाद-विवादों के द्वारा उन्होंने भारतीय विचारधारा को पूरे यूरोप में फैला दिया।

विदेश यात्रा में उन्हें सबसे मधुर मित्र के रूप में जे0जे0 गुडविन,सेवियर दम्पति और मार्गरेट नोब्ल मिले जिन्हांेने उनके कार्य एवं विचारों को सर्वत्र फैलाया। मार्गरेट नोब्ल ही 'भगिनी निवेदिता' कहलायी। भगिनी निवेदिता भारतीय तपस्वी समाज में प्रवेश करने वाली प्रथम पाश्चात्य महिला थीं। इन्होंने पश्चिम में विवेकानन्द की विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु जितना कार्य किया उतना किसी और ने नहीं किया। विदेश यात्रा के दौरान ही उनकी भेंट प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर से हुई। विवेकानन्द ने उन्हें भारत आने का निमंत्रण दिया। मैक्समूलर स्वामी जी के ज्ञान एवं व्यवहार से अभिभूत हो गये।

स्वामी जी ने यूरोप और अमेरिकावासियों को भोग के स्थान पर संयम और त्याग का महत्त्व समझाया, जबकि भारतीयों का ध्यान समाज की आर्थिक दुरावस्था की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने कहा - ''जो भूख से तड़प रहा हो उसके आगे दर्शन और धर्मग्रन्थ परोसना उसका मजाक उड़ाना है'' उन्होंने कहा -''भारत का कल्याण शक्ति साधना में है यहाँ के जन-जन में जो साहस और विवेक छिपा है उसे बाहर लाना है। मैं भारत में लोहे की माँसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ियाँ देखना चाहता हूँ।'' मानव मात्र के प्रति प्रेम और सहानुभूति उनका स्वभाव था। वे कहा करते - ''जब पड़ोसी भूखा मरता हो तब मन्दिर में भोग लगाना पुण्य नहीं पाप है। वास्तविक पूजा निर्द्दन और दरिद्र की पूजा है, रोगी और कमजोर की पूजा है।''

इंग्लैण्ड और अमेरिका में पर्याप्त प्रचार कार्य की व्यवस्था कर स्वामी जी भारत आये। यहाँ पहँुचकर अपने कार्य को दृढ़ आधार देने तथा मानव मात्र की सेवा के उद्देश्य से 1897 ई0

में ‘रामकृष्ण मिशन’ की स्थापना की। मिशन का लक्ष्य सर्वधर्म समभाव था।
नये मठों का निर्माण, देश-विदेश में प्रचार कार्य की व्यवस्था, इस सबके कारण स्वामी जी को विश्राम नहीं मिल पाता था। इसका प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ने लगा। चिकित्सकों के सुझाव पर स्थान परिवर्तन कर दार्जिलिंग चले गये, पर तभी कोलकाता में प्लेग फैल गया। उन्हें यह समाचार मिला तो वे महामारी से ग्रस्त लोगों की सेवा के लिए विकल हो उठे। उन्होंने कोलकाता लौटकर प्लेग ग्रस्त लोगों की सेवा का कार्य शुरू कर दिया ।
स्वामी जी के हृदय में नारियों के प्रति असीम उदारता का भाव था। वे कहते थे - जो जाति नारी का सम्मान करना नहीं जानती वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी, न आगे कर सकेगी।
4 जुलाई सन् 1902 ई0 को वे प्रातः काल से ही अत्यन्त प्रफुल्ल दिख रहे थे। ब्रह्म मुहूर्त में उठे। पूजा की। शिष्यों के बीच बैठकर रुचिपूर्वक भोजन किया। छात्रों को संस्कृत पढ़ाई । फिर एक शिष्य के साथ बेलूर मार्ग पर लगभग दो मील चले और भविष्य की योजना समझाई।
शाम हुई। संन्यासी बन्धुओं से स्नेहमय वार्तालाप किया। राष्ट्रों के अभ्युदय और पतन का प्रसंग उठाते हुए कहा ‘‘यदि भारत समाज संघर्ष में पड़ा तो नष्ट हो जाएगा’’ ।
सात बजे मठ में आरती के लिए घंटी बजी। वे अपने कमरे में चले गये और गंगा की ओर देखने लगे। जो शिष्य साथ था उसे बाहर भेजते हुए कहा - मेरे ध्यान में विघ्न नहीं होना चाहिए। पैंतालीस मिनट बाद शिष्य को बुलाया सब खिड़कियाँ खुलवा दीं। भूमि पर बायीं करवट चुपचाप लेटे रहे। ध्यान मग्न प्रतीत होते थे। घण्टे पहर बाद एक गहरा निःश्वास छोड़ा और फिर चिर मौन छा गया। एक गुरुभाई ने कहा - ‘‘उनके नथुनों, मुँह और आँखों में थोड़ा रक्त आ गया है ।’’ दिखता था कि वे समाधि में थे। इस समय उनकी अवस्था उन्तालीस वर्ष की थी।
अगले दिन संघर्ष, त्याग और तपस्या का प्रतीक वह महापुरुष संन्यासी गुरु भाई और शिष्यों के कंधांे पर जय-जयकार की ध्वनि के साथ चिता की ओर जा रहा था। वातावरण में जैसे ये शब्द अब भी गँूज रहे थे - ‘‘शरीर तो एक दिन जाना ही है, फिर आलसियों की भाँति क्यों जिया जाए। जंग लगकर मरने की अपेक्षा कुछ करके मरना अच्छा है। उठो जागो और अपने अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति हेतु कर्म में लग जाओ।

परिभाषिक शब्दावली

अनन्त: जिसका अन्त न हो

निर्बाध: जिसमें कोई बाधा न हो

अध्यात्म: आत्मा परमात्मा संबंधी विचार

पिपासा: प्यास

प्रवर्तक: किसी विशेष कार्य में लगाने वाला

परिव्राजक: संन्यासी
अभिभूत: सम्मोहित
प्रफुल्ल: अत्यन्त प्रसन्नचित्त
महाप्रयाण: प्राणों का त्याग कर देना
आमूल: जड़ सहित/ पूर्णतः
संचारित: प्रवेश करा देना

अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1. नरेन्द्र के क्या शौक थे ?
2. नरेन्द्र के बारे में रामकृष्ण परमहंस ने क्या टिप्पणी की थी ?
3. स्वामी विवेकानन्द ने जीवन के क्या लक्ष्य निर्धारित किए ?
4. शिकागो धर्म सभा में स्वामी जी को सबसे बाद में बोलने के लिए आमंत्रित किया गया क्योंकि-

(क) वे देर से पहँुचे थे।
(ख) वे पहले बोलने में झिझक रहे थे।
(ग) उन्होंने ही ऐसी इच्छा जताई थी।
(घ) वहाँ न तो कोई उन्हें पहचानता था, न समर्थक था।

5. शिकागो धर्म सम्मेलन में किस बात पर श्रोता देर तक तालियाँ बजाते रहे ?
6. स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व की किन विशेषताओं ने आपको सबसे ज्यादा प्रभावित किया और क्यों? संक्षेप में लिखिए।
7. निम्नलिखित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए -

Û विग्रह नहीं समन्वय और शान्ति के पथ पर बढ़ो।
Û मैं भारत में लोहे की माँसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ियाँ देखना चाहता हँू।
Û वास्तविक पूजा निर्धन और दरिद्र की पूजा है, रोगी और कमजोर की पूजा है।
Û जो जाति नारी का सम्मान करना नहीं जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी न आगे कर सकेगी।
Û भारत यदि समाज संघर्ष में पड़ा तो नष्ट हो जाएगा।
Û जंग लगकर मरने की अपेक्षा कुछ करके मरना अच्छा है। उठो, जागो और अपने अन्तिम लक्ष्य की पूर्ति हेतु कर्म मंे लग जाओ।

खोजें: -

Û संसार के मानचित्र में अमेरिका।
Û भारत के मानचित्र में कोलकाता।

Û स्वामी जी के विषय में अपने बड़ों से पूछकर/ पुस्तकों से पढ़कर और अधिक जानकारी कीजिए और कक्षा में बताइए।

Û आपको अभी तक किसने सबसे ज्यादा प्रभावित किया है ? उनके किन गुणों से आप प्रभावित हैं।

पाठ - 21

लाला लाजपत राय

"प्रिय मित्रों, मै आपको कैसे बताऊँ कि इस समय मैं पंजाब की स्थिति के बारे में क्या महसूस कर रहा हूँ। मेरा हृदय दुःख से भरा हुआ है। यद्यपि मेरी जबान मूक है। मैंने बहुत कोशिश की कि इस कष्ट के समय में मैं आप सब के साथ रहूँ और आपका दुःख बाटँू परन्तु मैं अपने प्रयास में असफल रहा हूँ। मैं शहीद नहीं कहलाना चाहता पर आप सब के संकट की घड़ी में आपके काम आना चाहता हूँ। मेरे हृदय में दुःख है और आत्मा घायल। मुझे नौकरशाहों की करतूतों पर बहुत क्रोध आ रहा है उससे भी ज्यादा गुस्सा आ रहा है अपने देश के लोगों के व्यवहार पर।"

इस संदेश को लाला लाजपत राय ने भेजा था, जब जलियाँवाला बाग का हत्याकाण्ड हुआ और वे उस समय भारत में नहीं थे। लाला लाजपत राय का जन्म फिरोजपुर जिले के ढोडिके नामक स्थान में 28 जनवरी 1865 में हुआ था। उनके पिता राधा किशन आजाद स्कूल के अध्यापक थे और माता थीं गुलाबी देवी। लाजपत राय ने अपने पिता को अपना गुरु स्वीकार किया और कहा -

"मुझे भारत में उनसे अच्छा अध्यापक नहंीं मिला। वे पढ़ाते नहीं थे बल्कि छात्रों को स्वयं सीखने में सहायता करते थे।"

लाला लाजपत राय ने अपने पिता से ही पढ़ने और सीखने का उत्साह पाया, साथ में पाया स्वतन्त्रता के प्रति अथाह प्यार और भारत के लोगों से लगाव।

लाजपत राय की माता ने उन्हें धर्म की शिक्षा दी। सन् 1882 में जब वे लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज के छात्र थे उस समय पंजाब और उत्तर भारत के अन्य भागों में आर्य समाज का प्रभाव एक तूफान के समान झकझोर रहा था। लाजपत राय स्वामी दयानन्द और आर्य समाज से प्रभावित हुए तथा आर्य समाज में सम्मिलित हो गये। इससे उनके जीवन को नयी दिशा मिली।

लाला लाजपत राय एक संवेदनशील व्यक्ति थे जो कुछ वे सीखते थे उसे आत्मसात कर लेते थे। संवेदनशीलता और स्वतन्त्र विचार की आदत के कारण वे भारतीय देशभक्तों की जीवन कथाओं में रुचि रखने लगे।

सन् 1885में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई स्थापना के तीन वर्ष बाद लाजपत राय इसमें सम्मिलित हुए। उस समय उनकी अवस्था 23 वर्ष की थी। भारतीयों को अपने विचार प्रगट करने का वह एक अच्छा मंच था। लाला लाजपत राय ने कांग्रेस का ध्यान जनता की मूल समस्याओं गरीबी और निरक्षरता की ओर आकर्षित किया।

‘‘लाला लाजपत राय के आस्था एवं विश्वास के कारण उन्हें पंजाब केसरी तथा शेरे पंजाब की उपाधि दी गयी।’’

जिस समय ब्रिटिश सरकार की शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी उस समय लाला लाजपत राय द्वारा सरकार का खुला विरोध करना बहुत साहस की बात थी। लाजपत राय की राष्ट्रीयता की भावना दिनों-दिन प्रचण्ड होती जा रही थी। इसी समय वह बाल गंगाधर तिलक के सम्पर्क में आये तिलक ने घोषणा की ‘‘स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहँूगा।’’ लाजपत राय तिलक की इस बात से पूर्णतः सहमत थे।

लाला लाजपत राय स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन का प्रचार पूरे देश में करना चाहते थे जिससे ब्रिटिश आर्थिक व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़े। इस तरह ब्रिटिश सरकार को जबरदस्ती हमारी स्वतन्त्रता की माँग को सुनना पड़ेगा। ब्रिटिश सरकार की अपनी निर्भय आलोचना, अपने दृढ़ विश्वास और जनता पर काबू होने के कारण लाला लाजपत राय पर कई बार राजद्रोह का आरोप लगाया गया। ब्रिटिश सरकार ने इन्हें कई बार अपने रास्ते से हटाने की कोशिश भी की तथा मई 1907 में लाला जी को गिरफ्तार करके कैद में डाल दिया।

राजनैतिक क्षेत्र उन्हें कट्टर देशभक्त कांग्रेस का सबसे योग्य प्रवक्ता मानता था। उन्होंने कई बार भारत का नेतृत्व विदेशों में भी किया। भारत के लिए समर्थन पाने की आशा में उन्होंने इंग्लैण्ड और यूरोप का कई बार दौरा भी किया।

8 नवम्बर 1927 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत के भविष्य पर रिपोर्ट देने के लिए एक आयोग नियुक्त किया। इसमें सात ब्रिटिश सदस्य थे जिसका अध्यक्ष सरजॉन साइमन था

लेकिन इस आयोग में भारतीय प्रतिनिधि नहीं थे। यह बात भारतीय राजनीतिज्ञों को बहुत बुरी लगी। जब ये सदस्य भारत आये तब लोगों ने इसका विरोध किया और काले झण्डे दिखाए।

''साइमन कमीशन'' के सदस्य भारत में जहाँ कहीं भी गए सभी जगह उनका व्यापक विरोध शुरू हो गया। लोगों ने 'साइमन वापस जाओ' के नारे लगाये।

आयोग के सदस्य 30 अक्टूबर 1928 को जब लाहौर पहुँचने वाले थे, वहाँ इनका विरोध कर रहे लोगों का नेतृत्व शान्तिपूर्ण ढंग से लाला लाजपत राय कर रहे थे। जैसे ही आयोग रेलवे स्टेशन पर पहँुचा, शान्तिपूर्ण जुलूस पर क्रूरता से लाठियाँ बरसायी गयीं। लाजपत राय उनके विशेष निशाने पर थे। उन पर भी लाठियों की खूब बौछारें हुई। लाठियाँ खाते हुए भी लाला लाजपत राय ने अपने वक्तव्य द्वारा लोगों को नियंत्रित रखा। जब आक्रमण समाप्त हुआ तब वे निर्भकिता से जूलूस का नेतृत्व करते हुए वापस आये।

सायंकाल की एक सभा में शेरे पंजाब फिर गरजा -

''प्रत्येक प्रहार जो उन्होंने हम पर किये हैं वह उनके साम्राज्य के पतन के ताबूत में एक और कील है''

घायल होने के बावजूद भी पंजाब के शेर के पास भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने की असीम शक्ति थी। लाठी चार्ज में आयी गम्भीर चोटों के कारण वे बीमार रहने लगे। 16 नवम्बर सन् 1929 को रात में उनका स्वास्थ्य अत्यधिक बिगड़ गया। अनेक प्रयत्न के बावजूद भी उन्हें बचाया नहीं जा सका और प्रातः काल उनका निधन हो गया।

लाला लाजपत राय राजनैतिक मंच के अलावा सामाजिक गतिविधियों में सतत प्रयत्नशील रहे सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों एवं शिक्षा का प्रचार करने के लिये उन्होंने दूर-दूर तक भ्रमण किया। लाला लाजपत राय ने अति वंचित एवं पिछड़े लोगों के लिए, जिन्हें शिक्षा का लाभ नहीं मिल पाता था, एक शिक्षण संस्था की स्थापना की इसके पश्चात् इस तरह की कई संस्थायें खोली गयीं और उनका अस्तित्व बनाये रखने के लिए उन्होंने अपनी बचत से 40,000 रुपया दान दिया। लाला लाजपत राय हृदय से शिक्षाशास्त्री थे। उनका विश्वास था कि जनता के उत्थान के लिए शिक्षा अनिवार्य है। वे बच्चों के शारीरिक विकास पर बहुत जोर देते थे, इसमें बच्चों के लिए पौष्टिक आहार भी शामिल था। उनकी इच्छा थी कि स्कूल के बच्चों को राष्ट्रीयता और देश भक्ति भी अन्य विषयों की तरह पढ़ाया जाय जिससे बच्चे अपने देश पर गर्व करना सीखें।

उनकी पत्रिका 'यंग इण्डिया' के अनुसार लाला लाजपत राय का महिलाओं की समस्याओं को देखने का दृष्टिकोण अपने समय से बहुत आगे एवं प्रगतिशील था। वे चाहते थे कि भारतीय महिला अपनी सलज्जता, मर्यादा और परिवार के प्रति अपने कर्तव्य की भावना कायम रखें। वे यह भी चाहते थे कि महिलायें अपने अधिकारों को माँगना सीखें। उनका

सुझाव था कि बालिकाओं को भी उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास का अवसर दिया जाय।

सन् 1896 में जब उत्तर भारत में भीषण अकाल था, लोग भूख से मर रहे थे, तब ब्रिटिश सरकार के राहत कार्य पर्याप्त नहीं महसूस कर भारतीय नेताओं ने राहत कार्य अपने हाथ में ले लिया जिसमें लाला लाजपत राय सबसे आगे थे।

इसी प्रकार पंजाब में भूकम्प पीड़ितों को राहत पहँुचाने और उनकी सहायता करने में आप अग्रणी रहे। लाला लाजपत राय ने अपने राहत कार्य के दौरान 'सर्वेन्टस ऑफ पीपुल सोसाइटी' की स्थापना भी की थी। इसके सदस्य भारतीय देश भक्त थे जिनका ध्येय ज्यादा से ज्यादा समय राष्ट्र की सेवा में व्यतीत करना था।

लाला लाजपत राय ने कई पुस्तकें भी लिखीं हैं:- जैसे

'ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', 'महाराज अशोक', 'वैदिक टैक्ट' 'अनहैप्पी इण्डिया'। उन्होंने कई पत्रिकाओं की स्थापना और सम्पादन भी किया जैसे - 'पंजाबी', 'यंगइण्डिया', 'दी पीपुल' और 'दैनिक वन्दे मातरम्' ये उनके काम के हिस्से थे।

मुहम्मद अली जिन्ना ने लाला लाजपत राय के लिए कहा था,

'वह भारत माता के महान पुत्रों में से एक है' लाला लाजपत राय के योगदानों को यह देश कभी भी भुला नहीं सकता। उनका त्याग और बलिदान देशवासियों के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

अभ्यास प्रश्न

1. लाला लाजपत राय का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
2. लाला लाजपत राय को कौन सी उपाधि दी गयी थी और क्यों ?
3. लाला लाजपत राय के साथ अंग्रेजों का व्यवहार कैसा था ?
4. लाला लाजपत राय का सामाजिक कार्यों में क्या योगदान रहा ?
5. लाला लाजपत राय की किन्हीं तीन रचनाओं के नाम लिखिए।
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

Û लाला लाजपत राय की माता ने उन्हें .... की शिक्षा दी।

Û लाला लाजपत राय का विचार था कि जनता के उत्थान के लिए................ अनिवार्य है।

Û पंजाब में भूकम्प पीड़ितों के लिए राहत कार्य करने के लिए उन्होंने .... की स्थापना की।

Û लाला लाजपत राय का सारा समय .... तथा सारा जीवन......... में बीता।

पाठ - 22

FTJ6E8

महर्षि अरविन्द

बहुत समय पहले एक अहंकारी और आडम्बरी राजा ने एक सभा बुलवाई। सभा में उस राजा ने प्रश्न किया" कौन महान है, ईश्वर या मैं ?"

प्रश्न अद्भुत था, लम्बे और उलझन भरे मौन के बाद विद्वानों में एक वृद्ध ने सिर झुकाकर आदर सहित कहा, "महाराज आप सबसे महान हैं।" इस बात पर सभा में असहमति के हल्के स्वर उठने लगे। इस पर विद्वान ने स्पष्ट किया, "आप हमें अपने राज्य से निकाल सकते हैं, पर ईश्वर नहीं क्योंकि उसका तो सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य है। उससे अलग कोई कहाँ जा सकता है। सब कुछ वही है।"

श्री अरविन्द द्वारा कहे गए 'ईश्वर ही सब कुछ है' इस ज्ञान ने राजा के जीवन की दिशा बदल दी। वे अरविन्द के अनुयायी हो गए।

अरविन्द का जन्म 15 अगस्त सन् 1872 ई0 में कोलकाता में हुआ। इनके पिता डॉक्टर कृष्णधन घोष और माता स्वर्णलता देवी थीं। पिता कृष्णधन घोष पूरी तरह पाश्चात्य विचारधारा में रंगे हुए थे जिसके कारण उन्होंने निश्चय किया कि वे अरविन्द को भी अंग्रेजी शिक्षा दिलाएंगे और किसी भी प्रकार के भारतीय प्रभाव से मुक्त रखेंगे।

पिता ने 'अंग्रेज बनो' की विचारधारा के साथ पाँच वर्ष की उम्र में ही अरविन्द को पढ़ाई के लिए दार्जिलिंग भेज दिया। दो वर्ष बाद उन्हें शिक्षा के लिए इंग्लैण्ड भेजा गया। अरविन्द के माता-पिता अध्यापकों को यह निर्देश देते हुए भारत लौट आए कि किसी भी दशा में अरविन्द को भारतीयों से न मिलने दिया जाय। इतने प्रतिबन्धों के बावजूद यह व्यक्ति आगे चलकर एक क्रांतिकारी, एक स्वतंत्रता सेनानी,एक महान भारतीय राजनैतिक, दार्शनिक तथा वैदिक पुस्तकों का व्याख्याता बना।

इंग्लैण्ड में अरविन्द ने उच्च शिक्षा प्राप्त की। वहाँ रहते हुए उनके दिमाग में अपने देश की स्वतंत्रता का विचार उथल-पुथल मचाने लगा। बचपन से ही देश से बाहर रहने के कारण वे भारतीयों के बारे में जानने को उत्सुक होने लगे। उन्होंने भारत लौटने का निश्चय किया।

यह वर्ष 1893 की घटना है जब अरविन्द ने भारत लौटने का निश्चय किया। यह वर्ष भारत में नव जागरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

इसी वर्ष - (1893) में

Û स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन के मंच से भारतीय संस्कृति के गौरव का उद्घोष किया।

Û लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के लिए गणपति उत्सव का शुभारम्भ किया।

Û एनी बेसेण्ट भारत आयीं और उन्होंने भारतवासियों में अपने प्राचीन धर्म के प्रति स्वाभिमान जगाने का प्रयास प्रारम्भ किया।

Û गाँधी जी रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष के लिए दक्षिण अफ्रीका पहुँचे।

यह अद्भुत संयोग था कि इसी वर्ष श्री अरविन्द घोष भारत वापस लौटे। इस समय उनकी आयु इक्कीस वर्ष थी। उन्हें न तो पश्चिमी देशों की सभ्यता और न ही धन-धान्य की लालसा सम्मोहित कर पाई। उनके अन्दर एक ओर अपने देश को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने की आकुलता थी, दूसरी ओर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित करने की तीव्र लालसा।

भारत लौटने पर नवयुवक अरविन्द बड़ौदा (बड़ोदरा) महाराज के आग्रह पर वहाँ के एक कालेज में प्रधानाचार्य के पद पर कार्य करने लगे। जिस समय वे शिक्षा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर रहे थे उस समय तक भारतीय राजनीति में भी उनका हस्तक्षेप शुरू हो गया था। वे लेखन द्वारा अपने विचारों को प्रकट करने लगे। इसके लिए उन्होंने कई भारतीय भाषाएँ सीखीं।

सन् 1901 में उनका विवाह मृणालिनी से हुआ। मृणालिनी को लिखे पत्रों में अरविन्द के विचारों की झलक मिलती है। उन्होंने लिखा था -

''दूसरे लोग भारत को देश के बजाय एक जड़ पदार्थ, खेत-खलिहान, मैदान, जंगल और नदी के अतिरिक्त कुछ नहीं देखते, पर मुझे तो वे अपनी माँ के रूप में दिखाई देता है।''

वास्तव में अरविन्द के लिए मातृभूमि ही सब कुछ थी। उन्हें यह बिल्कुल सहन नहीं होता था कि मातृभूमि गुलामी के बंधनों में जकड़ी यातना सह रही हो। वे जानते थे कि लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग अत्यन्त टेढ़ा-मेढ़ा, कँटीला और खतरों से भरा है? फिर भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अपने जीवन को भी न्योछावर करने को तैयार थे।

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अरविन्द का पहला कदम था लेखन के द्वारा जनमत तैयार करना। उन्होंने विभिन्न पत्रांे के लिए लिखना प्रारम्भ कर दिया। बाद में उन्होंने 'वन्दे मातरम्' नामक पत्र का संपादन भी किया। वे चाहते थे कि भारत के युवा उस समय सिर्फ भारत माँ के बारे में ही सांेचे बाकी सब कुछ भुला दें। उन्होंने लिखा,

"हमारी मातृभूमि के लिए ऐसा समय आ गया है अब उसकी सेवा से अधिक प्रिय कुछ नहीं। अगर तुम अध्ययन करो तो मातृभूमि के लिए करो। अपने शरीर मन और आत्मा को उसकी सेवा के लिए प्रशिक्षित करो ताकि वे समृद्ध हो, कष्ट सहो ताकि वे प्रसन्न रह सके।"

उन्होंने युवाओं को काम करना सीखने के लिए अवसर का लाभ उठाने का आह्वान किया। उन्होंने उनसे कार्य, ईमानदारी, अनुशासन, एकता, धैर्य और सहिष्णुता द्वारा निष्ठा विकसित करने को कहा।

1903 में उन्होंने बंगाल के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क किया और सक्रिय रूप से क्रान्तिकारी गतिविधियों में शामिल हो गए। अरविन्द की क्रान्तिकारी गतिविधियों से भयभीत होकर अंग्रेजांे ने 1908 में उन्हें और उनके भाई वारीन घोष को 'अलीपुर बम केस' के मामले में गिरफ्तार कर लिया। अलीपुर जेल में उन्हें 'दिव्य अनुभूति' हुई जिसे उन्होंने 'काशकाहिनी' नामक रचना में व्यक्त किया। जेल में रहते हुए उन्होंने अपने क्रान्तिकारी विचारों को कविताओं में स्पष्ट किया। जेल से छूटकर अरविन्द ने अंग्रेजी भाषा में 'कर्मयोगी' तथा बंगला भाषा में 'धर्म' नामक पत्रिकाओं का संपादन किया।

1912 तक श्री अरविन्द ने देश की सक्रिय राजनीति में भाग लिया। चालीस वर्ष की आयु के बाद उनकी रुचि पूर्णतया गीता, उपनिषद तथा वेदों की ओर हो गयी। उन्होंने पूर्व तथा पश्चिम के दर्शनशास्त्रों का अध्ययन कर अनेक पुस्तकें लिखी। भारतीय संस्कृति उनका प्रिय विषय था। भारतीय संस्कृति के बारे में उन्होंने 'फाउण्डेशन आफ इण्डियन कल्चर' तथा 'एक डिफेन्स आफ इण्डियन कल्चर' नामक प्रसिद्ध रचनाएँ प्रस्तुत की। उनके द्वारा रचा गया काव्य 'सावित्री' साहित्य जगत की अनमोल धरोहर है।

1926 से लेकर अपने निर्वाण (1950) तक श्री अरविन्द साधना और तपस्या में लगे रहे। सार्वजनिक सभाओं तथा भाषणों से दूर वे पॉण्डिचेरी में अपने आश्रम में मानव कल्याण के लिए निरन्तर चिन्तन शील रहे। वर्षांे की तपस्या के बाद उनकी अनूठी कृति 'लाइफ डिवाइन (दिव्य जीवन)' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की गणना विश्व की महान कृतियों में की जाती है।

श्री अरविन्द अपने देश और संस्कृति के उत्थान के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। पॉण्डिचेरी स्थित आश्रम उनकी तपोभूमि थी। यहीं पर उनकी समाधि बनाई गई। यह आश्रम आज भी अध्यात्मज्ञान का तीर्थस्थल माना जाता है जहाँ भारत ही नहीं वरन् विश्व के अनेक देशों के लोग अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने के लिए आते हैं।

अभ्यास

1. डा0 कृष्णधन घोष ने अध्यापकों को क्या निर्देश दिया ?
2. उन्होंने ऐसा निर्देश क्यों दिया ?
3. वर्ष 1893 क्यों महŸवपूर्ण है ?
4. अरविन्द को भारत किस रूप में दिखाई देता था ?
5. अरविन्द द्वारा लिखी गयी किस पुस्तक की गणना विश्व की महान कृतियों में की जाती है ?
6. सही (√) अथवा गलत (ग्) का चिõ लगाइए -

क. श्री अरविन्द का आश्रम बंगाल में है।
ख. श्री अरविन्द ने चौदह वर्ष तक रूस में शिक्षा प्राप्त की।
ग. श्री अरविन्द को धन-धान्य की लालसा सम्मोहित नहीं कर पाई।
घ. श्री अरविन्द ने फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर नामक पुस्तक लिखी।

7. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

Û श्री अरविन्द और उनके भाई वारीन घोष को .... के मामले में गिरफ्तार कर लिया गया।
Û जेल में उन्होंने .... नामक रचना की।
Û उनके द्वारा रचा गया काव्य .... साहित्य जगत की अनमोल धरोहर है।
Û .... स्थित आश्रम उनकी तपोभूमि थी।

8. वाक्यों को सही क्रम में लगाइए -

Û पॉण्डिचेरी स्थित आश्रम उनकी तपोभूमि थी।
Û उन्होंने ‘वंदे मातरम्’ पत्र का सम्पादन किया।
Û इंग्लैण्ड में अरविन्द ने उच्च शिक्षा प्राप्त की।
Û श्री अरविन्द का जन्म कोलकाता में हुआ।
Û भारत लौटने पर वे बड़ोदरा के कॉलेज में प्रधानाचार्य हो गए।

पाठ - 23

FTT2FV

सन्त गाडगे बाबा

“यदि पैसे की तंगी है, घर में थाली नहीं है तो हाथ पर रख कर खाओ, पत्नी के लिए कम दाम की साड़ी, कपड़े खरीदो, टूटे फूटे मकान में रहो, रिश्तेदारों की खातिरदारी में कम खर्च करो, परन्तु बच्चों को बिना पढ़ाये न मानो”

ये विचार थे, सन्त गाडगे जी के। सन्त गाडगे जी का जन्म महाराष्ट्र के अमरावती जिले के शेणगाँव में 23 फरवरी सन् 1876 में हुआ था। इनके पिता झिंगराजी जाणोरकर और माता सखूबाई थीं। इनका पूरा नाम देव ''डेबू'' जी झिंगरा जी जाणोरकर था। ये हमेशा मिट्टी का गडुआ या मटका रखे रहते थे, इसलिये उनको लोग गाडगे कहने लगे।

गाडगे जी के पिताजी खेती का काम करते थे। उनके पास छः-सात एकड़ भूमि खेती करने के लिये थी। पिता की शराब पीने की बुरी आदत होने के कारण सब कुछ समाप्त हो गया। धीरे-धीरे उनका स्वास्थ्य गिरता गया। अपनी मृत्यु से कुछ दिन पहले डेबूजी के पिताजी ने अपनी पत्नी से कहा कि डेबूजी का ध्यान रखना और उसे माँस-मदिरा से दूर रहने की सलाह देना।''

डेबूजी 8 वर्ष के थे, जब उनके पिता की मृत्यु हो गयी। माँ ने अपने पुत्र का पालन-पोषण गरीबी में किया। डेबूजी के नाना माँ-बेटे को अपने साथ अपने गाँव ले गये। माँ-बेटे मेहनत से काम करने लगे। डेबूजी पशु को चारा डालते और पशुओं को चराने ले जाते। कसरत करना और कुश्ती लड़ना उनका शौक था। डेबूजी की मामी कौतिकाबाई, तुकाराम, नामदेव आदि सन्तों के पदों को गातीं और वे उनका साथ देते। धीरे-धीरे वे पूरे गाँव में जाकर भजन गाने लगे। इस प्रकार डेबूजी गाँव की भजन मण्डली में भी सम्मिलित हो गये और लोग उनसे बहुत प्रभावित हुये।

सन् 1892 में डेबूजी का विवाह 16 वर्ष की आयु में कुन्ताबाई से हो गया। वे अपने मामा चन्द्रभान जी के साथ खेती में काम करने लगे। उनकी मेहनत, लगन और देखरेख के कारण खेती में अच्छा लाभ हुआ।

इसी समय गाँव के एक साहूकार ने अपनी ऊबड़-खाबड़ जमीन डेबूजी और उसके मामा को बेच दी। उस ऊसर भूमि पर दोनों ने कड़ी मेहनत करके उसे उपजाऊ बना लिया। साहूकार ने उस उपजाऊ जमीन को देखकर वापस लेने की बात सोची। डेबूजी और उनके मामा जी पढ़े लिखे नहीं थे, इसलिये उसने गलत कागजात में धोखे से उनके अँगूठे का निशान लगवाकर जमीन हड़प ली। इस धोखे को उनके मामा जी सहन नहीं कर सके और थोड़े दिन बाद ही उनका देहान्त हो गया। मामा की मृत्यु का डेबूजी पर गहरा असर हुआ। साहूकार ने गाँव के बहुत लोगों के साथ इस तरह की धोखाधड़ी की थी, इसलिये सन्त गाडगे बाबा ने संकल्प लिया कि गरीब लोगों की सहायता करेंगे और शिक्षित करेंगे ताकि किसी के धोखे के शिकार गाँव वाले न हो सकें। इसके लिये उन्होंने लोगों को संगठित किया

और समाज सेवा में लग गये। जहाँ भी गरीबों का शोषण होता, वे वहाँ पर संघर्ष करने के लिये तैयार रहते थे।

सन्त गाडगे जी ने अनुभव किया कि समाज में माँस-मदिरा का प्रचलन बहुत है। कहीं भी कोई भोज होता, उनमें माँस-मदिरा होना आवश्यक होता। डेबूजी देख चुके थे कि उनके पिता की मृत्यु का मुख्य कारण मदिरा थी, इसलिये उन्होंने इसको समाप्त करने का संकल्प अपने घर से ही लिया। उनकी पुत्री के नामकरण संस्कार के अवसर पर प्रीतिभोज देना तय हुआ। भोज में माँस-मदिरा रहित शुद्ध शाकाहारी भोजन परोसा गया जिससे पंच, मुखिया, माँस-मदिरा का सेवन करने वाले अन्धविश्वासी लोग भड़क उठे और कहा कि जब खिलाने को कुछ नहीं था तो बुलाया ही क्यों ? माँस-मदिरा खाना हमारी परम्परा है।

इस पर डेबूजी ने बहुत सहज भाव से समझाया और कहा कि मदिरा का सेवन करने वाले व्यक्ति को अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं होता, वह उत्पात मचाता है, जिससे समारोह के शुभ कार्यों में बाधा उत्पन्न होती है।

इन सभी बातों का यह प्रभाव हुआ कि बन्धु बान्धव भोजन करके ही गए। इस सफलता से डेबूजी प्रसन्न तो हुये परन्तु इस प्रयास को और आगे बढ़ाने का संकल्प किया।

सन्त गाडगे बाबा समाज में फैली हुई बुराइयों को दूर करने के लिये निरन्तर चिन्तन करते रहते। अतः सामाजिक क्रान्ति के लिये उन्होंने साधु-संन्यासियों से सम्पर्क किया, उनके साथ भजन कीर्तन करते।

कबीर, तुकाराम, ज्ञानदेव, नामदेव, नानक, स्वामी विवेकानन्द जैसे सन्तों के उदाहरणों को देकर वे प्रवचन देते। बोल-चाल की भाषा में प्रवचन देने के कारण समाज के लोग उनसे बहुत प्रभावित हुये।

सन्त गाडगे बाबा मूर्ति पूजा का विरोध करते थे। वे कहते थे कि प्रभु का निवास प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक स्थान पर है। अच्छे कार्य एवं दूसरों की मदद करके ईश्वर से मिला जा सकता है। वे मन्दिर बनवाने की अपेक्षा धर्मशाला बनवाने को अच्छा समझते थे क्योंकि धर्मशाला में लोग ठहरते थे और भोजन प्राप्त करते थे।

गाडगे जी ने अशिक्षा के कारण बहुत कष्ट सहन किये थे और समाज की दुर्दशा देखी थी, अतः गाडगे जी ने शिक्षा पर अधिक जोर दिया। इसके लिए उन्होंने सैकड़ों स्कूल बनवाये। वे कहते थे कि असली पूजा तो शिक्षा मन्दिर है जहाँ वास्तव में विद्यार्थी ही प्रभु की मूर्तियाँ हैं। गाडगे जी समाज की कुव्यवस्था और कुरीतियों से बहुत दुःखी थे, मानव सेवा करना सबसे पहला काम मानते थे। दहेज प्रथा, बाल विवाह, छुआ-छूत जैसी बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने बहुत संघर्ष किया और सफल हुये। गो-रक्षा हेतु उन्होंने एक अभियान चलाया।

''सच्चा ईश्वर दरिद्र नारायण के रूप में तुम्हारे सामने खड़ा है, उसकी सेवा करो।''

सन्त गाडगे बाबा

सन्त गाडगे बाबा से डॉ0 भीमराव अम्बेडकर और गाँधी जी की मुलाकात हुयी। गाँधी जी गाडगे जी के विचारों और आदर्शों से बहुत प्रभावित हुये। गाँधीजी ने गाडगे जी को गरीबों का सेवक माना।

सन्त गाडगे बाबा मधुमेह की बीमारी से पीड़ित थे। 1954 से उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे गिरने लगा। 1955 में बाबा को अस्पताल में भर्ती किया गया। अनेक बड़े-बड़े लोग उनको देखने आए। बाबा सोचने लगे कि अस्पताल का इतना खर्च उठाना मुश्किल है अतः बिना बताये ही रात को अस्पताल से निकल गए। इधर-उधर घूमकर प्रवचन देते। समय बीतने लगा, 6 दिसम्बर, 1956 को डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की मृत्यु का समाचार पाकर वे रो पड़े और कहा कि मेरा सेनापति चला गया। बाबा चिन्तित हुये, खाना पीना सब छोड़ दिया। 20 दिसम्बर, 1956 को सन्त गाडगे बाबा का स्वर्गवास हो गया।

अभ्यास

1. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

(क) सन्त गाडगे जी का नाम क्या था ?

(ख) डेबूजी के पिता ने अन्तिम समय में डेबूजी की माँ से क्या कहा ?

(ग) मामा की मृत्यु के बाद डेबूजी ने क्या संकल्प किया ?

(घ) सन्त गाडगे बाबा ने क्या-क्या कार्य किए ?

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) डेबूजी के पिता .... और माता .... थीं।

(ख) इनका विवाह .... की आयु में .... से हो गया।

(ग) उनके पिता की मृत्यु का मुख्य कारण .... थी।

(घ) भोजन में .... भोजन परोसा गया।

(ड.) वे मन्दिर बनवाने की अपेक्षा .... बनवाना अच्छा समझते थे।

3. सही वाक्य के सामने सही (√) तथा गलत वाक्य के सामने गलत (ग्) का निशान लगाइएः-

(क) सन्त गाडगे जी के पिता का नाम झिंगराजी जाणोरकर और माता सखूबाई थी।

(ख) 20 दिसम्बर, 1956 को सन्त गाडगे बाबा की मृत्यु हो गई।

(ग) डेबू जी आँत की बीमारी से पीड़ित थे।

(घ) सन्त गाडगे बाबा मूर्ति पूजा के विरोधी थे।

पाठ - 24

FU2XHI

सरोजिनी नायडू

''माँ मैंने एक कविता लिखी है सुनोगी?'' माता ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा, ''लेकिन तुम तो गणित का प्रश्न हल कर रही थी। हाँ कर रही थी पर वह समझ में नहीं आया। अभी तो एक कविता लिखी है।'' बेटी के बार-बार कहने पर माँ उनकी कविता सुनने बैठ गयीं उसी समय सरोजिनी के पिता भी आ गए। ग्यारह वर्ष की बिटिया के मुख से इतनी सुन्दर,सुरीली कविता सुनकर माता-पिता गद्गद हो गए। बेटी को शाबाशी देते हुए उन्होंने कहा , ''अरे तू तो गाने वाली चिड़िया जैसी है। माता-पिता की यह बात सच हुई। आगे चल कर सरोजिनी ''भारत कोकिला'' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सरोजिनी का जन्म 13 फरवरी 1879 ई0 को हैदराबाद में हुआ था। पिता अघोर नाथ चट्टोपाध्याय तथा माता वरदासुन्दरी की कविता लेखन में विशेष रुचि थी। सरोजिनी को अपने माता-पिता से कविता सृजन की प्रेरणा मिली।

बारह साल की उम्र में सरोजिनी ने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उच्च शिक्षा के लिए उन्हें इंग्लैण्ड भेजा गया। इंग्लैण्ड में सरोजिनी का परिचय प्रसिद्ध साहित्यकार एडमंड गॉस से हुआ। सरोजिनी की कविता लिखने में रुचि देखकर उन्होंने भारतीय समाज को ध्यान में रखकर लिखने का सुझाव दिया। इंग्लैण्ड में सरोजिनी के तीन कविता संग्रह प्रकाशित हुए।

1. द गोल्डेन थ्रेश होल्ड
2. द ब्रोकेन विंग

3. द सेप्टर्ड फ्लूट

द गोल्डेन थ्रेश होल्ड की कुछ पंक्तियाँ ''लिए बाँसुरी हाथों में हम घूमे गाते-गाते मनुष्य सब हैं बन्धु हमारे, जग सारा अपना है''

गोपाल कृष्ण गोखले तथा महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आने के बाद सरोजिनी नायडू राष्ट्रप्रेम तथा मातृभूमि को सम्बोधित कर कवितायें लिखने लगीं।

''श्रम करते हैं हम कि समृद्ध हो तुम्हारी जागृति का क्षण हो चुका जागरण अब देखो, निकला दिन कितना उज्ज्वल!''..

इंग्लैड से वापस आने पर सरोजिनी का विवाह गोविन्दराजुल नायडू के साथ हुआ। गोविन्दराजुल नायडू हैदराबाद के रहने वाले थे और सेना में डॉक्टर थे।

सरोजिनी नायडू की भेंट गाँधी जी से हुई। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में स्वयं सेवक के रूप में काम किया।

गोपाल कृष्ण गोखले सरोजिनी नायडू के अच्छे मित्र थे। वे उस समय भारत को अंग्रेजी सरकार से मुक्त कराने का कार्य कर रहे थे। सरोजिनी नायडू गोपाल कृष्ण गोखले के कार्य से प्रभावित हुईं। उन्हांेने कहा, '' देश को गुलामी की जंजीरों में जकड़ा देखकर कोई भी ईमानदार व्यक्ति बैठकर केवल गीत नहीं गुनगुना सकता। कवयित्री होने की सार्थकता इसी में है कि संकट की घड़ी में, निराशा और पराजय के क्षणों में आशा का सन्देश दे सकूँ।''

सरोजिनी नायडू का ज्यादातर समय राजनीतिक कार्यो में व्यतीत होता था। वे कांग्रेस की प्रवक्ता बन गयीं। उन्होंने देश भर में घूम-घूम कर स्वाधीनता का सन्देश फैलाया ।

सरोजिनी नायडू ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया। उन्होंने अशिक्षा, अज्ञानता और अन्धविश्वास को दूर करने के लिए लोगों से अपील (निवेदन) की । उनका कहना था कि ''देश की उन्नति के लिए रूढ़ियों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों के बोझ को उतार फेंकना होगा।''

1925 ई0 मंे जब वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष चुनी गयीं तो गाँधी जी ने उत्साह भरे शब्दों मंे उनका स्वागत किया और कहा ''पहली बार एक भारतीय महिला को देश की सबसे बड़ी सौगात मिली है।''

हृदय रोग से पीड़ित होते हुए भी सरोजिनी नायडू ने इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि देशों का दौरा किया।

''नमक कानून तोड़ो आन्दोलन'' में गाँधी जी की डाँडी यात्रा में उनके साथ रहीं। सरोजिनी नायडू अद्भुत वक्ता थीं। वे बोलना शुरू करतीं तो लोग उनके धारा प्रवाह भाषण को मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते थे। उनके भाषण स्वतंत्रता की चेतना जगाने में जादू का काम करते थे।

1942 में गाँधी जी के भारत छोड़ो आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया। आज़ादी की लड़ाई में उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा। अन्ततः भारत को पूर्ण स्वतंत्रता मिली। सरोजिनी नायडू उत्तर प्रदेश की राज्यपाल बनीं।

सरोजिनी नायडू जानती थीं कि नारी अपने परिवार, देश के लिए कितना महान कार्य कर सकती है।

नारी विकास को ध्यान में रखकर वे अखिल भारतीय महिला परिषद् (आल इण्डिया वूमेन कांफ्रेस) की सदस्य बनीं। विजय लक्ष्मी पंडित, कमला देवी चट्टोपाध्याय, लक्ष्मी मेनन, हंसाबेन मेहता आदि महिलायें इस संस्था से जुड़ी थीं।

सरोजिनी नायडू का व्यवहार बहुत सामान्य था। वे राजनीतिक एवं सामाजिक जिम्मेदारियों के बावजूद भी गीत और चुटकलों में आनन्द लिया करती थीं। युवा वर्ग की सुविधाओं की ओर उनका विशेष ध्यान था। सरोजिनी नायडू का विश्वास था कि सुदृढ़, सुयोग्य युवा पीढ़ी राष्ट्र की अमूल्य निधि है। सरोजिनी बहुत ही स्नेहमयी थीं। प्रकृति से उन्हें विशेष प्रेम था।

30 जनवरी 1948 ई0 को गाँधी जी की मृत्यु पर जब देश भर में उदासी छायी थी, सरोजिनी नायडू ने अपनी श्रद्धा°जलि में कहा, '' मेरे गुरु, मेरे नेता, मेरे पिता की आत्मा शान्त होकर विश्राम न करे बल्कि उनकी राख गतिमान हो उठे। चन्दन की राख, उनकी अस्थियाँ इस प्रकार जीवन्त हो जायें और उत्साह से परिपूर्ण हो जायें कि समस्त भारत उनकी मृत्यु के बाद वास्तविक स्वतंत्रता पाकर पुनर्जीवित हो उठे।''

''मेरे पिता विश्राम मत करो, न हमें विश्राम करने दो। हमें अपना वचन पूरा करने की क्षमता दो। हमें अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने की शक्ति दो। हम तुम्हारे उत्तराधिकारी हैं, सन्तान हैं, सेवक हैं ं तुम्हारे स्वप्न रक्षक हैं। भारत के भाग्य के निर्माता हैं, तुम्हारा जीवनकाल हम पर प्रभावी रहा है। अब तुम मृत्यु के बाद भी हम पर प्रभाव डालते रहो''।

मार्च 1949 को जब वे बीमार थीं, तब उसकी सेवा कर रही नर्स से सरोजिनी नायडू ने गीत सुनाने का आग्रह किया। नर्स का मधुर गीत सुनते-सुनते वे चिरनिद्रा में सो गयीं। मार्च 1949 को भारत कोकिला सदा के लिए मौन हो गयीं।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें श्रद्धा°जलि देते समय कहा था ''सरोजिनी नायडू ने अपनी जिन्दगी एक कवयित्री के रूप में शुरू की थी। कागज और कलम से उन्होंने कुछ कवितायें ही लिखी थीं लेकिन उनकी पूरी जिन्दगी एक कविता, एक गीत थी सुन्दर मधुर कल्याणमयी''।

अभ्यास प्रश्न

1. सरोजिनी नायडू अखिल भारतीय महिला परिषद् की सदस्य क्यों बनीं ?
2. युवावर्ग के प्रति उनका क्या विश्वास था ?
3. जवाहर लाल नेहरू ने सरोजिनी नायडू के प्रति अपनी श्रद्धा°जलि में क्या कहा था ?
4. राजनीति में आने के बाद सरोजिनी नायडू ने किन-किन पदों पर कार्य किया ?
5. सरोजिनी नायडू किस प्रदेश की राज्यपाल थीं ?
6. सही वाक्य के सामने सही (√) तथा गलत वाक्य के सामने गलत (ग) का निशान लगाइए:-

(क) सरोजिनी नायडू बचपन से ही कविताएँ लिखने में रुचि रखती थीं।
(ख) सरोजिनी नायडू का ज्यादातर समय धार्मिक कार्यांे में व्यतीत होता था।
(ग) सरोजिनी नायडू अद्भुत वक्ता थीं।
(ग) सरोजिनी नायडू का विचार था कि शिक्षित नारी अपने परिवार एवं समाज को बेहतर बना सकती है।

7. उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:-

(क) प्रसिद्ध साहित्यकार .... ने सरोजिनी नायडू को भारतीय समाज व संस्कृति को ध्यान में रखकर कविता लिखने का सुझाव दिया।
(ख) उनका कहना था कि देश की उन्नति के लिए .... के बोझ को उतार फेंकना होगा।
(ग) वे जब बोलना शुरू करतीं तो लोग उन्हें .... होकर सुनते थे।
(एडमंड गॉस, रूढ़ियों, परम्पराओं, रीतिरिवाजों, मन्त्रमुग्ध)

8. सरोजिनी नायडू के व्यक्तित्व में आपके विचार में कौन सी विशेषताएँ हैं। सूची बनाइए।

पाठ - 25

FUBTJ6

सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन

तुम जब सफलता की ऊँचाइयों तक पहुँच जाओ तो उस समय अपने कदमों को यथार्थ के धरातल से डिगने मत देना।

-सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन

क्या आप जानते हैं आपके विद्यालय में प्रतिवर्ष 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस क्यों मनाया जाता है?

पाँच सितम्बर का दिन महान दार्शनिक, कुशल शिक्षक एवं गणतंत्र भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन की याद दिलाता है। इनका जन्म 5 सितम्बर 1888 को तमिलनाडु के तिरुतानी गाँव में हुआ था।

वैसे तो समय-समय पर सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन इस देश के अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन हुए हैं। लेकिन एक शिक्षक के रूप में उन्होंने जो किया है वह युगों-युगों तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। मद्रास(चेन्नई) प्रेसीडेन्सी कॉलेज के सहायक अध्यापक पद से शुरू करके विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपति तक के सफर में इन्होंने कई महत्त्वपूर्ण कार्य किए। ये जहाँ भी गए वहाँ कुछ न कुछ सुधारात्मक बदलाव जरूर हुआ। आन्ध्र

विश्वविद्यालय को इन्होंने आवासीय विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया जबकि दिल्ली विश्वविद्यालय को राजधानी का श्रेष्ठ ज्ञान केन्द्र बनाने का भरपूर प्रयास किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए किया गया उनका कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

Û इनकी माता का नाम श्रीमती सीतम्मा तथा पिता का नाम सर्वपल्ली वीरास्वामी था।

Û आरम्भिक शिक्षा गाँव के ही स्कूल में तथा मद्रास (चेन्नई) क्रिश्चियन कॉलेज से बी0ए0 एवं एम0ए0।

Û 17 वर्ष की उम्र में ही शिवकमुअम्मा से शादी।

Û 1909 में मद्रास (चेन्नई) के प्रेसीडेन्सी कॉलेज से शिक्षक जीवन की शुरुआत।

Û 1918 में मैसूर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हुए।

Û 1921 में कोलकाता विश्वविद्यालय चले गए और दर्शनशास्त्र का शिक्षण करने लगे।

Û 1928 में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के साथ शैक्षिक सम्बन्धों की शुरुआत।

Û 1931 में आन्ध्र विश्वविद्यालय के कुलपति बने।

Û 1939 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति पद का कार्यभार दिया गया।

Û 1954 में दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति बने तथा इसी वर्ष भारत के सर्वोच्च सम्मान ’’भारत रत्न’’ से सम्मानित किए गए।

Û 1956 में पत्नी शिवकमुअम्मा का निधन।

Û 17 अप्रैल 1975 को देहावसान।

प्रमुख पुस्तकें -

द एथिक्स ऑफ वेदान्त, द फिलॉसफी ऑफ रवीन्द्र नाथ टैगोर, माई सर्च फार ट्थु, द रेन ऑफ कंटम्परेरी फिलॉसफी, रिलीजन एण्ड सोसाइटी, इण्डियन फिलॉसफी, द एसेन्सियल आफ सायकॉलजी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने भारत छोड़ो आन्दोलन में बढ़कर हिस्सा लिया। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश के तात्कालिक गवर्नर सर मारिस हेलेट ने क्रुद्ध होकर पूरे विश्वविद्यालय को युद्ध अस्पताल में बदल देने की धमकी दी। डॉ0 राधाकृष्णन तुरन्त दिल्ली गए और वहाँ वायसराय लार्ड लिनालियगो से मिले। उन्हें अपनी बातों से प्रभावित कर गवर्नर के निर्णय को स्थगित कराया। फिर एक नई समस्या आई। क्रुद्ध गवर्नर ने विश्वविद्यालय की आर्थिक सहायता बन्द कर दी। लेकिन राधाकृष्णन ने शान्तिपूर्वक येनकेन प्रकारेण धन की व्यवस्था की और विश्वविद्यालय संचालन में धन की कमी को आड़े नहीं आने दिया।

राधाकृष्णन ने कई प्रकार से अपने देश की सेवा की, किन्तु सर्वोपरि वे एक महान शिक्षक रहे जिससे हम सबने बहुत कुछ सीखा और सीखते रहेंगे।

-पं0 जवाहर लाल नेहरू

शिक्षा के क्षेत्र में उनके अमूल्य योगदान को देखते हुए भारत सरकार की ओर से वर्ष 1954 में उन्हें स्वतंत्र भारत के सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' से विभूषित किया गया। डॉ0 राधाकृष्णन 'भारत रत्न' से सम्मानित किए जाने वाले प्रथम भारतीय नागरिक थे। वास्तव में उनका भारत रत्न से सम्मानित होना देश के हर शिक्षक के लिए गौरव की बात थी।

राजनीति और राधाकृष्णन -

सन् 1949 में राधाकृष्णन को सोवियत संघ में भारत के प्रथम राजदूत के रूप में चुना गया। उस समय वहाँ के राष्ट्रपति थे जोसेफ स्तालिन। इनके चयन से लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। आदर्शवादी दर्शन की व्याख्या करने वाला एक शिक्षक भला भौतिकवाद की धरती पर कैसे टिक पायेगा ? लेकिन सबको विस्मृत करते हुए डॉ0 राधाकृष्णन ने अपने चयन को सही साबित कर दिखाया। उन्होंने भारत और सोवियत रूस के बीच सफलतापूर्वक एक मित्रतापूर्ण समझदारी की नींव डाली।

विशेष उल्लेखनीय-

Û सोवियत संघ में राजदूत बनकर मास्को और भारत के बीच दोस्ती की नींव डाली। (1949-1954)

Û भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति के रूप में सदन की कार्यवाही में एक नया आयाम प्रस्तुत किया । (1952-1962)

Û भारत के राष्ट्रपति के रूप में देश का मान बढ़ाया । (1962-1967)

डॉ0 राधाकृष्णन को विदेशों में जब भी मौका मिलता स्वतंत्रता के पक्ष में अपने विचार व्यक्त करने से नहीं चूकते। उनका कहना था-"भारत कोई गुलाम नहीं जिस पर शासन किया जाय, बल्कि यह अपनी आत्मा की खोज में लगा एक राष्ट्र है।"

शासनाध्यक्ष राधाकृष्णन-

सन् 1955 में डॉ0 राधाकृष्णन स्वतंत्र भारत के उप राष्ट्रपति के पद पर चुने गए। यह चुनाव आदर्श साबित हुआ। जितनी मर्यादा उन्हें उपराष्ट्रपति पद से मिली उससे कहीं ज्यादा उन्होंने उस पद की मर्यादा में वृद्धि की। राधाकृष्णन अक्सर राज्य सभा में होने वाली गरमागरम बहस के बीच अपनी विनोदपूर्ण टिप्पणियों से वातावरण को सरस बना देते थे।

राधाकृष्णन जिस तरीके से राज्य सभा की कार्यवाही का संचालन करते थे उससे प्रतीत होता था कि यह सभा की बैठक नहीं बल्कि पारिवारिक मिलन समारोह है ।

-जवाहर लाल नेहरू

1962 में डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन भारतीय गणतंत्र के दूसरे राष्ट्रपति बने। वे कभी भी एक दल अथवा कार्यक्रम के समर्थक नहीं रहे। राष्ट्रपति के रूप में उन्होंने विदेशों में अपने भाषण के दौरान राजनीतिज्ञों एवं लोगों को प्रेरित किया-"लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में अपने कर्तव्य का पालन करें। इस बात को पूरी तरह समझ लें कि लोकतंत्र का अर्थ मतभेदों को मिटा डालना नहीं बल्कि मतभेदों के बीच समन्वय का रास्ता निकालना है।"

1967 में राष्ट्रपति पद से मुक्त होते हुए उन्होंने देशवासियों को सचेत करते हुए कहा-"इस धारणा को बल नहीं मिलना चाहिए कि हिंसापूर्ण अव्यवस्था फैलाये बिना कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। सार्वजनिक जीवन के सभी पहलुओं में जिस प्रकार से छल-कपट प्रवेश कर गया है उसके लिए अधिक बुद्धिमत्ता का सहारा लेकर हमें अपने जीवन में उचित परिवर्तन लाना चाहिए। समय के साथ-साथ हमें आगे जरूर बढ़ते रहना चाहिए।"

सरस वक्ता-

डॉ0 राधाकृष्णन एक कुशल वक्ता थे। इनके वक्तव्य को लोग मंत्रमुग्ध होकर सुनते थे। वे गंभीर से गंभीर विषयों का प्रस्तुतीकरण अत्यन्त सहज रूप से कर लेते थे। इनके व्याख्यानों से देश ही नहीं वरन् पूरी दुनिया के लोग प्रभावित थे। वे कठिन से कठिन विषयों की व्याख्या आधुनिक शब्दावलियों में इस प्रकार करते थे कि इसका प्रयोग लोग अपनी आधुनिक अनुभूतियों के अनुरूप कर सकें।

मद्रास (चेन्नई) प्रेसीडेंसी कॉलेज के एक छात्र के शब्दों में-"जितनी देर तक वे पढ़ाते थे, उतने समय तक उनका प्रस्तुतीकरण उत्कृष्ट था। वे जो कुछ भी पढ़ाते थे, सभी के लिए सुगम था। उन्होंने कभी कोई कठोर बात नहीं कही, फिर भी उनकी कक्षाओं में अत्यधिक अनुशासन का पालन होता था।"

राधाकृष्णन के व्याख्यानों ने भारतीय तथा यूरोपियन, दो भिन्न संस्कृतियों को समझने के लिए सेतु का काम किया।

- प्रसिद्ध उपन्यासकार एल्डस हक्सले।

घर वापसी-

डॉ0 राधाकृष्णन राष्ट्रपति पद से मुक्त होने के बाद मई 1967 में मद्रास (चेन्नई) स्थित अपने घर के सुपरिचित माहौल में लौट आये और जीवन के अगले आठ वर्ष बड़े ही आनन्दपूर्वक व्यतीत किये।

भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान, कुशल राजनीतिज्ञ एवं अद्वितीय शिक्षक के रूप में विख्यात

डॉ0 राधाकृष्णन 17 अप्रैल, 1975 को इस दुनिया से चल बसे। जीवन भर वे 'ह्यूम' की सलाह-"एक दार्शनिक बनो, परन्तु कीर्ति अर्जित करने के साथ ही एक मानव बने रहो," पर चलते रहे।

राधाकृष्णन के दुबले-पतले शरीर में एक महान आत्मा का निवास था-एक ऐसी श्रेष्ठ आत्मा जिसकी हम सभी श्रद्धा, प्रशंसा, यहाँ तक कि पूजा करना भी सीख गए।

-नोबेल पुरस्कार विजेता, सी0 वी0 रमन

अभ्यास

1. शिक्षक दिवस कब और क्यों मनाया जाता है ?

2. 'भारत रत्न' पुरस्कार किसे और क्यों दिया जाता है ?

3. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए डॉ0 राधाकृष्णन ने कौन-सा उल्लेखनीय कार्य किया ?
4. डॉ0 राधाकृष्णन के व्यक्तित्व की विशेषताओं के बारे में पाँच वाक्य लिखिए।
5. डॉ0 राधाकृष्णन ने अपने आपको शिक्षक से शुरू करके राष्ट्रपति के पद तक पहुँचाया। क्या आपके आस-पास कुछ ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने जीवन में सामान्य स्तर से शुरू करके बहुत तरक्की की है ? उनके बारे में पता कीजिए और दस वाक्य लिखिए।

पाठ - 26

FUKPKT

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद

आज से लगभग एक शताब्दी पहले की बात है बारह वर्ष की आयु पूरी होने से पहले ही एक बालक ने पुस्तकालय, वाचनालय और वाद - विवाद प्रतियोगिता आयोजित करने की संस्था चलायी। जब वह पन्द्रह वर्ष का हुआ तो अपने से दुगुनी आयु के विद्यार्थियों की एक कक्षा को पढ़ाया। तेरह से अठारह साल की आयु के बीच बहुत सी पत्रिकाओं का सम्पादन किया। सोलह वर्ष के इस दुबले-पतले लड़के ने एक बड़े विद्वान के रूप में भाषा विशेष की राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स से मुख्य वक्ता के रूप में भाषण दिया। इस बालक का नाम था - अबुल कलाम जो आगे चलकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के संघर्ष का एक महान नायक कहलाया।

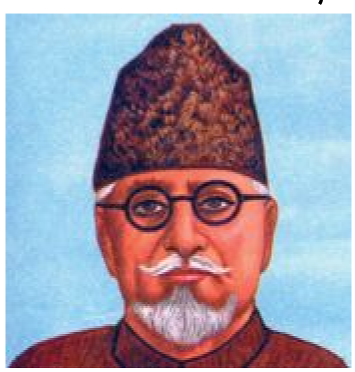

मौलाना अबुल कलाम का जन्म 11 नवम्बर सन् 1888 ई0 को मक्का नगर में हुआ था। इनके पिता मौलाना खैरुद्दीन अरबी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनकी माँ पवित्र नगर मदीना के मुफ्ती की पुत्री थी। इनका बचपन मक्का मदीना में बीता। इनके मकान पर शिक्षा प्रेमियों की हर समय अपार भीड़ लगी रहती थी। परिवार 1907 में भारत लौट आया और कोलकाता में बस गया।

मौलाना आजाद का प्रारम्भिक जीवन सामान्य बालकों से कुछ भिन्न था। खेलना तो उन्हें भी पसन्द था, पर उनके खेल दूसरे बच्चों के खेलों से कुछ अलग होते थे। उदाहरणार्थ - कभी वे घर के सभी बक्सों को एक लाइन में रखकर अपनी बहनों से कहते- ''देखो ! यह

रेलगाड़ी है, मैं इस रेलगाड़ी में से उतर रहा हँू। तुम लोग चिल्ला - चिल्लाकर कहो हटो-हटो रास्ता दो, दिल्ली के मौलाना आ रहे हैं।'' फिर वे अपने पिता की पगड़ी सिर पर बाँधकर बड़ी गम्भीर मुद्रा में धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हुए बक्सों की रेलगाड़ी से इस प्रकार नीचे उतरते जैसे कि बड़ी उम्र का कोई सम्मानित व्यक्ति उतर रहा हो।

मौलाना आजाद को बचपन से ही पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव था। वे जब किसी विषय के अध्ययन में लगते तो उसमें ऐसा डूबते कि उन्हें अपने आस-पास का भी होश न रहता। अबुल कलाम बड़ी कुशाग्र बुद्धि के थे। एक बार जो कुछ पढ़ लेते, वह हमेशा के लिए उन्हें याद हो जाता। उन्होंने साहित्य दर्शन और गणित आदि विषयों का गहन अध्ययन किया था। शायरी और गद्य लेखन का शौक बचपन से ही था। अपनी इसी रुचि के कारण उन्होंने समय-समय पर कई पत्र-पत्रिकाएं निकालीं और स्वयं उनका सम्पादन किया। उनकी पहली पत्रिका 'नैरंगे आलम' है। जिस समय यह पत्रिका निकली, मौलाना आजाद की आयु मात्र 12 वर्ष थी।

अबुल कलाम आजाद की योग्यता और विद्वता से लोगों का परिचय तब हुआ जब उन्होंने 'लिसानुल सिदक' नाम का एक दूसरा पत्र प्रकाशित किया। इसके माध्यम से उनका उद्देश्य तत्कालीन मुस्लिम समाज में फैले अन्ध-विश्वासों को समाप्त कर उनमें सुधार लाना था। अंजुमन हिदायतुल इस्लाम के लाहौर अधिवेशन में तत्कालीन जाने-माने लेखकांे एवं कवियों के सामने 15-16 वर्ष का एक दुबला-पतला, बिना दाढ़ी मूँछ का नवयुवक बोलने के लिये आगे बढ़ा तो लोगों की आँखे आश्चर्य से खुली की खुली रह गयीं। इस युवक ने अपनी सधी और संयत भाषा में विचार व्यक्त करने शुरू किये तो सभा में सन्नाटा छा गया। उस लड़के ने करीब ढ़ाई घंटे तक बिना लिखित रूप के सीधे अपना भाषण दिया। इस घटना के बाद पत्रकारिता के क्षेत्र में अबुल कलाम आजाद की धाक जम गयी। उन्होंने आगे चलकर 'अलनदवा' और 'वकील' सहित कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

सन् 1912 ई0 में उन्होंने अपना प्रसिद्ध साप्ताहिक अखबार 'अलहिलाल' आरम्भ किया। यह अखबार भारत में और विदेशों में जल्दी प्रसिद्ध हो गया। लोग इकट्ठे होकर उस अखबार के हर शब्द ऐसे पढ़ते या सुनते जैसे वह स्कूल में पढ़ाया जाने वाला कोई पाठ हो। उस अखबार ने लोगों में जागृति की एक लहर उत्पन्न कर दी। आखिर सरकार ने 'अल-हिलाल' की 2000 रुपये और 10000 रुपये की जमानतें जब्त कर लीं। मौलाना आजाद को सरकार के खिलाफ लिखने के जुर्म में बंगाल से बाहर भेज दिया गया। वे चार वर्ष से भी अधिक समय तक राँची (झारखंड) में कैद रहे।

इसी सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा ''मुझे खुशी है कि सन् 1920 से मुझे मौलाना के साथ काम करने का मौका मिला है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सबसे महान नेताओं में से वे एक हैं।

राष्ट्रीय गतिविधियों में सक्रिय रहने के कारण मौलाना आजाद को कई बार जेल जाना पड़ा। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन को उन्होंने अपना पूरा समर्थन दिया। राष्ट्रीयता की भावना का विस्तार तथा 'हिन्दू- मुस्लिम एकता' उनके मिशन के अंग थे। इससे उन्हें राष्ट्रीय नेताओं का भरपूर विश्वास और असीमित प्यार मिला। एक बार अपनी गिरफ्तारी के समय उन्होंने कहा था- 'हमारी सफलताएं चार सच्चाइयों पर निर्भर करती हैं और मैं इस समय भी सारे देशवासियों को इन्हीं के लिए आमन्त्रित करता हूँ:-

हिन्दू - मुस्लिम एकता, शान्ति, अनुशासन और बलिदान

1923 ई0 में इन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का अध्यक्ष चुना गया। उस समय उनकी आयु केवल 35 वर्ष थी। मौलना आजाद सच्चे राष्ट्रवादी और हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्षधर थे।

मौलाना आजाद हिन्दू- मुस्लिम एकता के अनन्य दूत थे। उन्होंने एकता के सिद्धान्त से एक इंच भी हटना सहन नहीं किया। आलोचनाओं के बीच वे चट्टान की भाँति दृढ़ रहे। वे 1940 में कांग्रेस अध्यक्ष बने और स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन के समय (1940-1947) अंग्रेजों से हुई विभिन्न वार्ताओं में शामिल रहे।

अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ और जवाहर लाल नेहरू ने प्रधान मन्त्री का पद सँभाला। मन्त्रिमण्डल में मौलाना आजाद को शिक्षामंत्री का पद दिया गया। मौलाना ने शिक्षा, कला, संगीत और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किये। शिक्षामन्त्री के रूप में मौलाना आजाद के सम्मुख दो लक्ष्य थे - राष्ट्रीय एकता की स्थापना और भारत के कल्याण के लिए शिक्षा की नवीन व्यवस्था।

मौलाना आजाद लगभग दस वर्ष तक भारत के शिक्षामंत्री रहे। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में देश का नेतृत्व किया। यह उनकी सूझबूझ और दूर-दृष्टि का ही परिणाम था कि देश में शिक्षा के समुचित विकास का कार्यक्रम द्रुत गति और व्यवस्थित ढंग से चलाया जा सका। उन्होंने प्रौढ़ तथा महिला शिक्षा पर भी अत्यधिक बल दिया।

राष्ट्रीय एकता, धार्मिक सहिष्णुता तथा देश-प्रेम का अनूठा आदर्श प्रस्तुत करने वाला एक यशस्वी एवं साहसी साहित्यकार, पत्रकार तथा उच्चकोटि का राजनेता 22 फरवरी सन् 1958 ई0 को हमारे बीच से सदा-सदा के लिये विदा हो गया।

अभ्यास-प्रश्न

1. अबुल कलाम आजाद के बचपन के खेल किस भावना को प्रदर्शित करते थे ?

2. 'अल हिलाल' अखबार की जमानत क्यों जब्त कर ली गयी ?

3. "वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के महान नेताओं में से एक हैं।" आजाद के बारे में यह बात किसने और क्यों कही ?

4. महिलाओं की शिक्षा के विषय में आजाद के क्या विचार थे ?

5. मौलाना अबुल कलाम आजाद द्वारा लिखित पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की सूची बनाइए।

6. अबुल कलाम आजाद के व्यक्तित्व के प्रमुख गुण बताइए।

7. निम्नलिखित गद्यांश में रिक्त स्थानों की पूर्ति नीचे दिए गए शब्दों की सहायता से कीजिए-

सक्रिय, असहयोग, विस्तार, मिशन, विश्वास, असीमित

आजाद को कई बार जेल जाना पड़ा। महात्मा गांधी के .... आन्दोलन को उन्होंने अपना पूरा समर्थन दिया। 'राष्ट्रीयता की भावना का ....' तथा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' उनके .... के अंग थे। इससे उन्हें राष्ट्रीय नेताओं का भरपूर .... और .... प्यार मिला।

पाठ - 27

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर

"जब तक हम अपना तीन तरह से शुद्धिकरण नहीं करते, तब तक हमारी स्थायी प्रगति नहीं हो सकती। हमें अपना आचरण सुधारना होगा, अपने बोलचाल का तरीका बदलना होगा और विचारों में दृढ़ता लानी होगी।" ये उद्गार हैं डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के ।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को दलितों का मसीहा, समाज सेवी एवं विद्विवेत्ता के रूप में जाना जाता है इन्होंने देश की स्वतंत्रता के पश्चात् 4 नवम्बर 1948 को भारतीय संविधान का प्रारूप संविधान सभा में प्रस्तुत किया। डॉ0 अम्बेडकर इस प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। इस प्रारूप में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ थीं। संविधान सभा में कई बार पढ़े जाने के बाद अन्ततः 26 नवम्बर 1949 को इस प्रारूप को स्वीकार कर लिया गया।

जन्मः 14 अप्रैल 1891

जन्मस्थानः महू, इन्दौर, मध्य प्रदेश

मृत्युः 6 दिसम्बर 1956

माताः भीमा बाई सकपाल

पिताः रामजी

भीमराव अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। बचपन में माँ इन्हंे प्यार से ‘‘भीमा’’ कहकर पुकारती थीं। इनके पिता अंग्रेजी सेना में सूबेदार थे। सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने 14 साल तक मिलिट्री स्कूल में हेड मास्टर के रूप में कार्य किया। अम्बेडकर के घर में शिक्षा का माहौल था। पिता बच्चों को रामायण तथा महाभारत की कहानियों के साथ संत नामदेव, तुकाराम, मोरोपंत तथा मुक्तेश्वर की कविताएँ सुनाते थे तथा स्वयं उनसे सुनते थे।

इन्हीं दिनों ज्योतिबा फुले दलितों में शिक्षा का प्रसार एवं उन्हें सामाजिक स्वीकृति दिलाने की दिशा मंें कार्य कर रहे थे। भीमराव के पिता रामजी इनके अच्छे मित्र और प्रशंसक थे। ज्योतिबा के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव बालक भीमराव पर भी पड़ा।

भीमराव पाँच वर्ष की उम्र में स्कूल जाने लगे परन्तु उनका मन पढ़ने से ज्यादा बागवानी में लगता था। पिता उनकी पढ़ाई के बारे में काफी चिन्तित रहते थे। धीरे-धीरे बालक भीम की रुचि पुस्तकों में बढ़ती गयी अब वे पाठ्यपस्ुतकों के अलावा अन्य पुस्तकें भी पढ़ने लगे । उन्हें पुस्तकांे से गहरा लगाव हो गया। 1907 में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उन्होंने एलफिंस्टन कालेज से इण्टर की पढ़ाई पूरी की। 17 वर्ष की उम्र में ही इनका विवाह रमाबाई से कर दिया गया। पिता का स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगड़ने लगा था। अब भीमराव के आगे की पढ़ाई का खर्च भी उठाना मुश्किल हो रहा था।

भीमराव की प्रतिभा को पहचानकर बड़ौदा नरेश सयाजी राव ने उनकी पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की इसके सहारे उन्होंने 1912 में बी0ए0 (स्नातक) की परीक्षा उत्तीर्ण की। सयाजी राव ने उन्हें उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भेजा। न्यूयार्क विश्वविद्यालय से उन्होंने 1915 में एम0 ए0 की डिग्री हासिल की। इसी दौरान भीमराव ने एक शोध प्रबन्ध भी लिखा। इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक था - ‘‘भारत के लिए राष्ट्रीय लाभांश- ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन’’। इस शोध प्रबन्ध पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय ने उन्हें ‘‘डॉक्टर ऑफ फिलासफी’’ की उपाधि प्रदान की। अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र के अध्ययन के लिए भीमराव लंदन चले गये। इसी बीच सयाजी राव ने इनकी छात्रवृत्ति समाप्त कर दी। भीमराव को विवश होकर स्वदेश लौटना पड़ा, परन्तु उन्होंने मन ही मन संकल्प कर लिया कि पढ़ाई के लिए एक बार वे पुनः लंदन जायेंगे। पढ़ाई के दौरान उन्होंने अपने दैनिक खर्चों में कटौती करके अब तक लगभग 2000 पुस्तकें खरीद ली थीं।

उल्लेखनीय

Û जुलाई 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना। इसका उद्देश्य छुआछूत दूर करना था।

Û ब्रिटिश सरकार द्वारा दलितों को सेना में भर्ती पर रोक को लेकर 19-20 मार्च 1927 को महाड़ में दलितों का सम्मेलन बुलाना।

Û सरकार ने दलित हितों का

प्रतिनिधित्व करने हेतु मुम्बई लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए 1929 में मनोनीत किया। डॉ0 अम्बेडकर ने शिक्षा, मद्य-निषेध, कर व्यवस्था महिला एवं बाल कल्याण जैसे विषयों पर कड़ा रुख अपनाया।

Û प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय गोलमेज सम्मेलन में दलितों के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेना

Û महात्मा गांधी के साथ दलितों के उत्थान के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर। यह समझौता पूना समझौता कहलाता है।

Û प्रमुख रचनाएँ - दी बुद्ध एण्ड हिज गास्पेल, थॉट्स आन पाकिस्तान, रेवोल्यूशंस एण्ड काउन्टर रेवोल्यूशंस इन इण्डिया।

महाराष्ट्र में रहकर उन्होंने शाहूजी महाराज की सहायता से 31 जनवरी 1920 से ''मूकनायक'' नामक अखबार निकालने की शुरुआत की। इस अखबार का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में व्याप्त जाति प्रथा को समाप्त करना तथा अस्पृश्यता का निवारण करना था। 21 मार्च 1920 को भीमराव ने कोल्हापुर में दलितों के सम्मेलन की अध्यक्षता की। सम्मेलन में कोल्हापुर नरेश शाहूजी महाराज ने लोगों से कहा -

''तुम्हें अम्बेडकर के रूप में अपना
उद्धारक मिल गया है''

भीमराव अम्बेडकर पैसों का प्रबन्ध करके पुनः 1920 में लंदन गये। वहाँ वकालत की पढ़ाई पूरी करने के बाद भारत लौट आये। अब वे बैरिस्टर बन चुके थे।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर आजीवन विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों से जुड़े रहे। लगातार काम करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इसी बीच 27 मई 1935 को इनकी पत्नी रमाबाई का निधन हो गया।

1936 में डॉ0 अम्बेडकर ने ''इंडिपेंडंेट लेबर पार्टी'' नाम से एक राजनैतिक दल का गठन किया। 1937 में हुए प्रांतीय चुनाव में डॉ0अम्बेडकर और उनके कई साथी भारी बहुमत से विजयी हुए जबकि इस चुनाव में इंडियन नेशनल कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा 'हिन्दू महासभा' जैसे राजनीतिक दल चुनाव में भाग ले रहे थे। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को जुलाई 1941 में गणित रक्षा सलाहकार समिति का सदस्य नियुक्त किया गया। 1945 में उन्होंने पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की। इस सोसाइटी ने अपना पहला शिक्षण संस्थान 1946 में सिद्धार्थ कॉलेज के नाम से खोला। 1952 में डॉ0 अम्बेडकर लोक सभा के उम्मीदवार थे लेकिन चुनाव हार गये। उनको मार्च 1952 में राज्य सभा के लिए चुन लिया गया और वे भारत सरकार के कानून मन्त्री बने। 14 अक्टूबर 1956 को डॉ0 अम्बेडकर ने अपने तीन लाख समर्थकों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। 6 दिसम्बर 1956 को भारतीय क्षितिज का यह सितारा सोया तो फिर नहीं उठा। उनके योगदानों के लिए भारत सरकार ने सन् 1990 में उन्हें मरणोपरान्त 'भारत रत्न' से सम्मानित किया।

भले ही आज डॉ0 अम्बेडकर हमारे बीच नहीं हैं फिर भी अपने सामाजिक और वैचारिक योगदानों के लिए यह देश उन्हें युगों-युगों तक याद करता रहेगा।

स्मरणीय

डॉ0 अम्बेडकर 1941 में गणित रक्षा सलाहकार समिति के सदस्य बने।

1945 में पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना।

1946 में सिद्धार्थ कॉलेज खोलना।

1952 में राज्य सभा के लिए निर्वाचित ।

14 अक्टूबर 1956 को बौद्ध धर्म ग्रहण करना।

1990 में मरणोपरान्त ‘भारत रत्न’ से सम्मानित।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान में कितने अनुच्छेद और अनुसूचियाँ हैं ?

2. डॉ0 अम्बेडकर को पहली बार लंदन से वापस क्यों होना पड़ा ?

3. डॉ0 अम्बेडकर ने स्थायी प्रगति के लिए क्या उपाय सुझाए हैं ?

4. मूक नायक अखबार का क्या उद्देश्य था ?

5. कोल्हापुर नरेश शाहूजी महाराज ने अम्बेडकर को दलितों के उद्धारक की संज्ञा क्यों दी ?

6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

(प) बालक पर ज्योतिबा के व्यक्तित्व का गहरा .... पड़ा।

(पप) मूक नायक अखबार का उद्देश्य .... को समाप्त करना था।

(पपप) मार्च 1952 में भीमराव अम्बेडकर को .... के लिए चुन लिया।

(पअ) डॉ0 भीमराव अम्बेडकर को दलितों का मसीहा, विधिवेत्ता, समाजसेवी एवं ....के रूप में याद किया जाता है।

7. सही विकल्प चुनिए।

(अ) 1927 में अम्बेडकर ने महाड़ में दलितों का सम्मेलन बुलाया, क्योंकि

(प) दलितों ने उनसे सम्मेलन बुलाने के लिए कहा था।

(पप) ब्रिटिश सरकार ने दलितों को सेना में भर्ती पर रोक लगा दी।

(पपप) वे दलितों के नेता के रूप में जाने जाते थे।

(ब) बहिष्कृत हितकारिणी सभा का उद्देश्य,

(प) बहिष्कृत लोगों को संगठित करना।

(पप) छूआ-छूत दूर करना।

(पपप) बहिष्कृत लोगों को छात्रवृत्ति दिलाना।

8. अपनी शिक्षिका से चर्चा कीजिए -

(प) भारत रत्न किसे और क्यों दिया जाता है ?
(पप) गोलमेज सम्मेलन किसके द्वारा और क्यों बुलाया जाता था ?

पाठ - 28

आचार्य विनोबा भावे

समय-समय पर इस देश में ऐसे व्यक्ति जन्म लेते रहे हैं जिन्होंने अपनी विशिष्ट क्षमताओं से देश तथा समाज को एक नई दिशा दी है। ऐसे ही व्यक्ति थे आचार्य विनोबा भावे। उनके व्यक्तित्व में सन्त, आचार्य (शिक्षक) और साधक तीनों का समन्वय था।

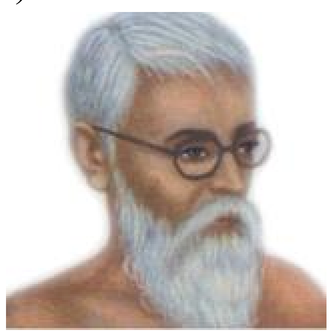

विनोबा जी का जन्म 11 सितम्बर 1895 को महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के गागोदा ग्राम में हुआ था। बचपन में विनोबा जी को घूमने का विशेष शौक था। वे अपने गाँव के आसपास की पहाड़ियों, खेतों, नदियों एवं अन्य ऐतिहासिक स्थलों का भ्रमण किया करते थे। वे पढ़ाई के दिनों में पाठ्यपुस्तकों के साथ -साथ आध्यात्मिक पुस्तकें भी पढ़ा करते थे। छोटी उम्र में ही उन्होंने तुकाराम गाथा, दासबोध ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य और गीता का अनेक बार अध्ययन किया।

विनोबा जी को अनेक भाषाओं का ज्ञान था। वे उच्चकोटि के रचनाकार भी थे। उनकी प्रारम्भिक रचनाएं मराठी भाषा में हैं। बाद में उन्होंने हिन्दी, तमिल, संस्कृत और बंगला में अनेक पुस्तकों की रचना की।

कर्त्तव्यनिष्ठ विनोबा -

महात्मा गाँधी के आग्रह पर विनोबा साबरमती आश्रम चले आये। आश्रम में आकर वे खेती का काम करने लगे। वहाँ वे कई महीनों तक मौन रहकर कार्य करते रहे। इनके कार्यों से प्रभावित होकर गाँधीजी ने इन्हें प्रथम सत्याग्रही की संज्ञा दे डाली। लोगों ने सोचा कि वे गूँगे

हैं, पर थोड़े ही दिनों बाद वे उपनिषदों का नियमित वाचन करने लगे तथा खाली समय में संस्कृत पढ़ाने का काम भी देखने लगे। विनोबा जी के पास कक्षा-5 से लेकर ऊँची कक्षाओं तक के बच्चे पढ़ने आया करते थे। उनकी रोचक और प्रभावशाली शैली से बच्चे और शिक्षक दोनों ही प्रभावित थे। लोगों ने उनके गुणों से प्रभावित होकर उन्हें आचार्य कहना प्रारम्भ कर दिया। विनोबा जी में आलस्य लेशमात्र भी नहीं था। वे दृढ़संकल्पी और सच्चे कर्मयोगी थे।

विनोबा जी किसी पुस्तक का अध्ययन कर रहे थे तभी एक बिच्छू ने उनके पैर में डंक मार दिया। दर्द असह्य था। बिच्छू के जहर से उनका पैर काला पड़ गया। पीड़ा बढ़ने पर उन्होंने चरखा मँगाया और एकाग्र होकर सूत कातने लगे। इस कार्य में वे इतने तन्मय हो गये कि उन्हें न तो बिच्छू के डंक मारने का ध्यान रहा और न ही पीड़ा का।

सुना और गुना भी -

विनोबा जी के जीवन पर गीता के उपदेशों का गहरा प्रभाव था। सन् 1932 में धलिया जेल में रहकर उन्होंने गीता पर 18 प्रवचन दिये जो आज 'गीता प्रवचन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हर समय चिन्तन-मनन में लीन रहते थे। लोगों की सेवा करना उनका धर्म बन गया था।

गाँधी जी के निधन के बाद विनोबा लगभग चौदह वर्ष तक देश के अनेक हिस्सों में घूमते रहे और भूदान आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करते रहे। जगह-जगह प्रार्थना सभाएं आयोजित कर इस सम्बन्ध में व्यक्तिगत और सामाजिक उत्थान के बारे में अपने विचार व्यक्त करते रहे। उनकी बात बहुत संक्षिप्त, संयत और सटीक होती थी। विनोबा जी कहने की अपेक्षा करने में अधिक विश्वास करते थे। वे पुरानी बातों को नये तालमेल के साथ इस तरह प्रस्तुत करते थे कि लोगों को स्वाभाविक रूप से जीवन की एक नई दिशा मिलती थी। विनोबा जी गाँधी, तिलक, तुकाराम, तुलसीदास, मीरा, रामकृष्ण और बुद्ध के जीवन से बहुत प्रभावित थे।

विनोबा के विचार

Û समता का अर्थ है बराबरी, ऐसी बराबरी जिसमें योग्यता के अनुसार सभी का आँकलन हो।

Û भक्ति ढोंग नहीं है दिन भर पाप करके झूठ बोलकर प्रार्थना नहीं होती।

Û जिस घर में उद्योग की शिक्षा नहीं है उस घर के बच्चे जल्दी घर का नाश कर देंगे।

Û स्वावलम्बन का अर्थ है अपने आप पर निर्भर होना। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे का मुँह न ताकना। अर्थात '' जितना कमाओ, उतना खाओ।

भूदान-

विनोबा जी देश के कोने-कोने में स्थित सुदूर गाँवों तक जाते थे और वहाँ ज्यादा भूमि वाले किसानों से मिलकर उनकी भूमि का कुछ हिस्सा भूमिहीनों के लिए माँगते थे। इस तरह भूदान यज्ञ के जरिये देश के अनेक भूमिहीन लोगों को विनोबा जी ने जमीन दिलायी।

सर्वोदय सिद्धान्त-

विनोबा जी के सर्वोदय सिद्धान्त के तीन तत्व हैं - सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह (त्याग)। उनका कहना था कि आध्यात्मिक विकास का आधार सत्य है। सामाजिक विकास का आधार अहिंसा और आर्थिक विकास का आधार अपरिग्रह है। वे सर्वोदय का उद्देश्य स्वशासन और स्वावलम्बन मानते थे।

उन दिनों चम्बल की घाटी में डाकुओं का बहुत आतंक था। विनोबा जी चम्बल घाटी के कनेरा गंाँव गये। वहाँ उन्होंनें लोगों को सम्बोधित किया। उनके विचारों से प्रभावित होकर चम्बल घाटी के उन्नीस डाकुओं ने एक साथ आत्मसमर्पण किया।

आचार्य ने जो कहा -

आचार्य विनोबा भावे ने जीवन के कई पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। वे जहाँ-तहाँ आयोजित प्रार्थना सभाओं, गोष्ठियों में प्रवचन दिया करते थे। यहाँ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर उनके विचार संक्षेप में दिये जा रहे हैं -:

समता-

"समता का मतलब क्या है? बराबरी, कैसी बराबरी ? घर में चार रोटियाँ हैं और दो खाने वाले, हर एक को कितनी रोटियाँ दी जाएँ - दो-दो। ऐसी समता अगर माताएँ सीख लें तो अनर्थ हो जायेगा। गणित की समता दैनिक व्यवहार के किसी काम की नहीं। यदि इनमें से एक खाने वाला 2 साल का और दूसरा 25 साल, तो एक अतिसार से मरेगा ओर दूसरा भूख से। समता का अर्थ है योग्यता के अनुसार कीमत आँकना।"

उद्योग-

अपने देश में आलस्य का भारी वातावरण है। यह आलस्य बेकारी के कारण आया है। शिक्षितों का तो उद्योग से कोई सम्बन्द्द ही नहीं रहता। जो खाता है उसे उद्योग तो करना ही चाहिए चाहे वह जिस तरह का हो। घरों में उद्योग का वातावरण होना चाहिए। आलस्य की वजह से ही हम दरिद्र हो गये हैं, परतंत्र हो गए हैं।

भक्ति-

"भक्ति के माने ढोंग नहीं है। हमें उद्योग छोड़कर झूठी भक्ति नहीं करनी है। खाली समय में भगवान का स्मरण कर लो। दिन भर पाप करके, झूठ बोलकर, प्रार्थना नहीं होती।"

सीखना-सिखाना-

'जिसे जो आता है वह उसे दूसरे को सिखाये और जो सीख सके, उसे खुद सीखे। केवल पाठशाला की शिक्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।'

तालमेल -

"कहा जाता है कि वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गाय और बाघ एक झरने पर पानी पीते थे। इसका अर्थ क्या हुआ ? बाघ की न केवल क्रूरता नष्ट होती थी बल्कि गाय की भीरुता भी नष्ट हो जाती थी। मतलब " गाय - भय = शेर - क्रूरता " इस तरह मेल बैठता है। नहीं तो शेर को गाय बनाने का सामर्थ्य तो सर्कस वालों में भी है।"

एक आदर्श व्यक्तित्व -

विनोबा जी ने अपना सारा जीवन एक साधक की तरह बिताया। वे ऋषि, गुरु तथा क्रांतिदूत सभी कुछ थे। उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसा तेजस्वी एवं प्रभावशाली था कि कोई भी व्यक्ति उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। अद्भुत व्यक्तित्व के प्रकाश-पुरुष आचार्य विनोबा का निधन 15 नवम्बर 1982 को हो गया लेकिन अपने विचारों के साथ वे सदैव हमारे बीच हैं, रहेंगे। वर्ष 1983 में इन्हें भारत सरकार के द्वारा मरणोपरान्त 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया।

अभ्यास प्रश्न

1. विनोबा जी के सर्वोदय का उद्देश्य क्या था ?
2. विनोबा जी ने आर्थिक विकास का आधार किसे और क्यों बताया है ?
3. भूदान आन्दोलन का क्या उद्देश्य था ?
4. विनोबा जी कैसी बराबरी चाहते थे ? आपकी नजर में समता का क्या मतलब है ?
5. 'जितना कमाओ - उतना खाओ' विनोबा जी के इस कथन का क्या मतलब है।
6. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. विनोबा जी में आलस्य .... भी नहीं था।
2. लोगों की सेवा करना विनोबा का .... बन गया था।
3. विनोबा जी का कहना था कि केवल .... की शिक्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता है।
4. दिन भर पाप करके, झूठ बोलकर .... नहीं होती।

7. इन वाक्यों से आप क्या समझते हैं, साथियों के साथ चर्चा कीजिए और अपनी कॉपी में लिखिए-

समता का अर्थ है योग्यता के अनुसार कीमत आँकना।

केवल पाठशाला की शिक्षा पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

पाठ - 29

G448I9

स्वामी प्रणवानंद

भारत की पावन भूमि पर समय-समय पर युगीन महापुरुषों का अवतरण होता रहा है। ऐसे ही एक महापुरुष और 'भारत सेवाश्रम संघ' के संस्थापक स्वामी प्रणवानंद जी का जन्म 29 जनवरी, सन् 1896 ई0 को माघी पूर्णिमा के दिन बुधवार को वर्तमान बांग्लादेश के फरीदपुर जिले में बाजितपुर ग्राम में हुआ था। इनके बचपन का नाम विनोद था। पिता का नाम विष्णुचरण दास 'विष्णु भुइयाँ' तथा माता का नाम शारदा देवी था। ये बचपन से ही मधुर व्यवहार, निर्मल बुद्धि व शांत स्वभाव के थे और प्रायः किसी वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ रहते थे।

गाँव की पाठशाला में प्राथमिक शिक्षा के उपरांत उन्हें अंग्रेजी हाईस्कूल में प्रवेश दिलाया गया। पढ़ाई की अपेक्षा वे व्यायाम, साधना व चिंतन में बहुत सक्रिय रहते थे। वे शुद्ध शाकाहारी थे। ब्रह्मचर्य साधना पर उनका विशेष बल था। मन पर नियंत्रण व इंद्रिय संयम के लिए वे आहार संयम, निद्रा संयम आदि के साथ संकल्प साधना के द्वारा आगे बढ़ते गए। ग्रामवासी उन्हें विनोद ब्रह्मचारी के रूप में जानने लगे। उनकी ब्रह्मचर्य साधना, त्याग, तपस्या एवं निःस्वार्थ सेवा भावना की ख्याति दूर-दूर तक फैलने लगी थी।

1913 ई0 में जब विनोद कक्षा-दस के विद्यार्थी थे तब उनके शिक्षक वीरेंद्र बाबू ने उनके संन्यास की प्रबल इच्छा को जानकर उन्हें योग मार्ग की सही जानकारी के लिए गोरखपुर के योगिराज गंभीरनाथ की शरण में जाने की सलाह दी।

गुरु प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा के फलस्वरूप अक्टूबर 1913 में विजयदशमी के अगले दिन शुक्ल एकादशी को विनोद ने गोरखपुर मठ में नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख योगिराज बाबा गंभीरनाथ से दीक्षा ग्रहण की। गोरखपुर में आठ माह की साधना में रहकर गुरु के निर्देशानुसार वे काशी आकर गंगा किनारे अस्सी घाट पर साधना करने लगे। गुरु आदेश से वे पुनः बाजितपुर लौट आए। यहाँ नौ दिनों तक अनवरत एकासन में कठिन साधना की। अब उनका अधिकांश समय आध्यात्मिक उन्नति की साधना में बीतने लगा।

सन् 1914 में प्रारंभ हुए प्रथम विश्वयुद्ध में मदारीपुर के क्रांतिकारी नेता पूर्णदास से संपर्क के आरोप में फरीदपुर षड्यंत्र में पाँच सौ लोगों के साथ पुलिस ने इन्हें भी पकड़ा। तीन माह के बाद सतीशचंद्र दास के प्रयास से इन्हें कारागार से मुक्ति मिली।

सन् 1916 में माघी पूर्णिमा के दिन अपनी ध्यानस्थ साधना से उठने पर उनके मुख से चार महावाक्य निकले-यह युग महाजागरण का युग है। महामिलन का युग है। महासमन्वय का युग है। और, यह युग महामुक्ति का युग है। ....भारत पुनः जागेगा, पुनः उठेगा और पुनः विश्वसभा में जगद्गुरु का आसन ग्रहण करेगा।

अपने घर के ही समीप विनोद ब्रह्मचारी ने अपना आश्रम बनाया। वर्ष 1917 में उन्होंने यहाँ प्रथम माघी पूर्णिमा महोत्सव के साथ 'भारत सेवाश्रम संघ' की स्थापना की। इसके बाद मदारीपुर, खुलना, आशाशुनी आदि कई सेवाश्रमों की स्थापना की। अकाल, दुर्भिक्ष, बाढ़, प्राकृतिक प्रकोप आदि से पीड़ित लोगों के सहायतार्थ भारत सेवाश्रम संघ का अतुलनीय योगदान सामने आने लगा। वर्ष 1923 में माघी पूर्णिमा के उत्सव के दिन उन्होंने कई नामों से प्रचलित विभिन्न आश्रमों का एकीकरण करके 'भारत सेवाश्रम संघ' नाम दिया।

वर्ष 1924 के प्रयाग के अर्धकुम्भ मेले में विनोद ब्रह्मचारी ने स्वामी गोविंदानंद गिरि से संन्यास की विधिवत दीक्षा ग्रहण की और उनका नाम हुआ स्वामी प्रणवानंद। वहाँ से लौटने पर उन्होंने अपने प्रथम सात शिष्यों को संन्यास धर्म में दीक्षित किया।

भारत में उन दिनों ब्रिटिश शासन था। इस काल में छात्रों व युवकों की दुरावस्था को देखकर उन्होंने उनके चारित्रिक विकास पर प्रारंभ से ही अत्यधिक बल दिया था। इसे ध्यान में रखकर वैदिक गुरुकुल प्रथा संचालित करने हेतु स्वामी प्रणवानंद ने मदारीपुर, खुलना, राजशाही आदि केंद्रों में ब्रह्मचर्य विद्यालय खुलवाए और प्रत्येक केंद्र के साथ एक गुरुकुल विद्यार्थीभवन को भी जोड़ा गया। सन् 1927 ई0 में उन्होंने गृहस्थ आंदोलन की शुरुआत करके गृहस्थ नर-नारियों को वैदिक संस्कृति के माध्यम से पारिवारिक जीवन संचालित करने का उपदेश दिया।

उन्होंने शक्ति साधना एवं शक्तिशाली राष्ट्र गठन के प्रचार-प्रसार के लिए सन् 1929 से भारत सेवाश्रम संघ की मुख पत्रिका 'प्रणव' का प्रकाशन आरंभ किया।

वर्ष 1919 से 1934 तक उन्होंने जो जन सेवा, समाज सेवा, शिक्षा व स्वास्थ्य के लिए संयम प्रयोग, धार्मिक आदर्श का प्रचार, पवित्र तीर्थ भूमियों का भ्रमण व उपदेश, गुरु पूजा की प्रतिष्ठा आदि कार्य प्रारम्भ किए थे, उन सबका समाहार करके लगातार अगले आठ वर्ष तक समाज के उत्थान, मर्यादा रक्षण, राष्ट्रीय स्वाभिमान आदि के लिए कार्य करते रहे। उन्होंने रक्षीदल, मिलन मंदिर की स्थापना करके लोगों में आपसी सद्भावना का विकास किया।

स्वामी प्रणवानंद जी की एक अभूतपूर्व देन है-पश्चिम बंगाल को भारत के साथ जोड़ना। इसके लिए उन्होंने डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जीको आगे बढ़ाया और बंगाल के पश्चिम हिस्से को भारत में सम्मिलित करने के लिए ब्रिटिश शासन को विवश कर दिया जो आज पश्चिम बंगाल राज्य के रूप में जाना जाता है।

उन्होंने भारत भ्रमण कर भारत सेवा संघ के कार्यों के लिए कठिन परिश्रम किया। आजीवन समाज व राष्ट्र सेवा हेतु कठोर परिश्रम करते हुए इस विलक्षण महापुरुष ने 8 जनवरी, 1941 ई0 को अपना स्थूल शरीर त्याग दिया।

स्वामी प्रणवानंद जी का उद्घोष था कि "धर्म है-त्याग, सत्य और ब्रह्मचर्य में। धर्म है-आचार, अनुष्ठान और अनुभूति में।" स्वामी जी की यह अनमोल वाणी चिरकाल तक हमारा मार्गदर्शन करती रहेगी। उनके द्वारा स्थापित भारत सेवाश्रम संघ निरंतर मानवजाति की सच्ची सेवा और कल्याण भावना की ओर अग्रसर है।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. विनोद ब्रह्मचारी ने प्रथम दीक्षा कब और किससे ग्रहण की ?

2. विनोद ब्रह्मचारी के चारों महावाक्य लिखिए।

3. वे 'विनोद ब्रह्मचारी' से 'स्वामी प्रणवानंद' कब और कैसे हुए ?

4. स्वामी प्रणवानंद ने भारत सेवाश्रम संघ की स्थापना क्यों की ?

5. स्वामी प्रणवानंद का क्या उद्घोष था ?

र्

G4D4JH

खान अब्दुल गफ्फार खँा

“मैं अभी भारत से लौटा हँू और वहाँ की एक बात ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। मैंने देखा कि पुरुष और स्त्रियाँ अपने देश और देशवासियों की सेवा करने को तत्पर हैं। अगर आप चाहते हैं कि आपका देश और आपके लोग समृद्ध हांे तो आप केवल अपने लिए जीना छोड़ दंे, आपको समाज के लिए जीना आरम्भ करना होगा।”

-खान अब्दुल गफ्फार खाँ वर्ष 1928 में सीमान्त प्रान्त की एक जनसभा के भाषण के अंश

बादशाह खान के नाम से प्रसिद्ध, खान अब्दुल गफ्फार खाँ के साथ भारत की आजादी के लिए किये गये संघर्ष एवं उसके बाद की सुनहरी यादें जुड़ी हैं। उनकी जिन्दगी सत्य, अहिंसा, त्याग, बलिदान, शान्ति, सादगी तथा प्रेम की जीती जागती मिसाल है। महात्मा गांद्दी के आदर्शों पर चलकर उन्होंने सम्पूर्ण देशवासियों का दिल जीत लिया। 1947 ई0 के पूर्व भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा अफगानिस्तान के कान्धार प्रान्त से मिलती थी और उस भारतीय क्षेत्र को सीमा प्रान्त कहा जाता था। बादशाह खान का जन्म स्थान, कार्य क्षेत्र तथा सामाजिक गतिविधियाँ सीमा प्रान्त से ही सम्बन्द्दित थीं। इस कारण इन्हें सीमान्त गांधी कहा जाता है।

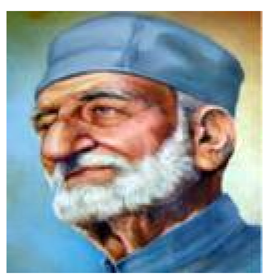

बादशाह खान का पालन-पोषण ऐसे परिवार में हुआ जिसमें जीवन का मुख्य उद्देश्य मानव-सेवा तथा भाई-चारा था। इसलिए मानव-प्रेम तथा कर्तव्य की भावना, बादशाह खान के मन में बचपन से ही गहरी बैठ गई थी। जब बादशाह खान पाँच वर्ष के थे, उनके माता-पिता ने उन्हें पढ़ने के लिए स्थानीय मदरसा में भेजा। धीरे-धीरे उन्होंने पूरा कुरान कण्ठस्थ कर लिया और हाफिजे कुरान बन गए। मदरसे की शिक्षा के बाद वे पेशावर में म्युनिसिपल बोर्ड हाईस्कूल में भर्ती हुए। फिर वे एडवर्ड्स मेमोरियल मिशन हाईस्कूल में गए ।

पेशावर में अंग्रेज अफसरों के नेतृत्व में अंग्रेजी सैन्य दस्ता था। बादशाह खान का नौकर बरनी काका, उन्हें ब्रिटिश फौज के बारे में कहानियाँ सुनाया करता और सैनिकांे की रोमांचक घटनाओं से उनका दिल बहलाता था। एक दिन सेना में सीधी नियुक्ति पाने के लिए उन्होंने ब्रिटिश भारतीय सेना के प्रधान सेनापति को अर्जी भेजी। उन्हें बुलाया गया और तुरन्त चुन लिया गया क्योंकि उनका कद छः फीट तीन इंच था और वे बलिष्ठ थे। बादशाह खान बहुत कम समय तक फौज में रहे। एक दिन उन्होंने अपने साथी अधिकारी को ब्रिटिश लेफ्टिनेंट द्वारा अपमानित होते हुए देखा तो उन्हें आत्मग्लानि हुई और वे सेना की नौकरी छोड़कर घर चले आए।

इसके बाद बादशाह खान अध्ययन के लिए अलीगढ़ चले गए। वहाँ मौलाना अबुल कलाम आजाद के अखबार अल-हिलाल को वे नियमित रूप से पढ़ने लगे। यह अखबार स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र व न्याय के प्रचार के लिए विख्यात था। इससे उनमें देश भक्ति की भावना और सुदृढ़ हुई।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ की मित्रता विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक संगठनों के नेताओं से थी जो आजादी की प्राप्ति के लिए सक्रिय थे। इन गतिविधियों में लगे रहने के कारण पेशावर में उन्हें गिरफ्तार किया गया। जेल में उन्हंें कठोर यातना दी गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका संघर्ष करने का संकल्प और दृढ़ हो गया। उनके अदम्य साहस और धैर्य का अभूतपूर्व प्रभाव अन्य साथी कैदियों पर भी पड़ा। जिस समय खान अब्दुल गफ्फार खाँ जेल में थे उनकी माँ की मृत्यु हो गयी। जेल से छूटकर वे सीद्दे अपने गाँव गए। गाँव के सभी लोगों ने अब्दुल गफ्फार खाँ का स्वागत किया। एक बड़ी जनसभा में लोगों ने उन्हें ‘‘फख्र ए अफगान’’ (पठानों का गौरव) की उपाधि से सम्मानित किया।

पठानों को जाग्रत करने के लिए उन्होंने मई 1928 ई0 में पश्तो भाषा का एक समाचार पत्र ‘पख्तून’ निकाला। कुछ ही दिनों में अंग्रेजों ने इस समाचार पत्र के प्रसार पर रोक लगा दी। 1928 ई0 में लखनऊ में कांग्रेस की सभा में वे महात्मा गांधी तथा जवाहर लाल नेहरू से मिले । बादशाह खान की जवाहर लाल नेहरू से अफगानिस्तान एवं पख्तूनों की मूल समस्याओं के विषय में लम्बी बातचीत हुई। उन्हें महसूस हुआ कि भारत के स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ जुड़े रहने में पख्तूनों की भलाई है। उनको विश्वास हो गया कि अहिंसा तथा एकता से विजय प्राप्त की जा सकती है।

सन् 1929 ई0 में बादशाह खान ने एक इतिहास प्रसिद्ध संगठन बनाया जिसका नाम ‘‘खुदाई खिदमतगार’ था। इसके सदस्य प्रतिज्ञा करते थे कि हर अत्याचार का विरोध अहिंसा और सत्याग्रह से करेंगे। कुछ ही दिनों के भीतर ‘खुदाई खिदमतगार’ आन्दोलन के सदस्य लाल कुर्ती वाले के नाम से प्रसिद्ध हो गये। ‘सविनय अवज्ञा आन्दोलन’ को चलाने के लिए वे पेशावर के नाकी थाना पहुँचे तो गिरफ्तार कर लिए गये। 13 मई 1930 ई0 को सेना की एक टुकड़ी ने उतमानजई गाँव को चारों ओर से घेर लिया और लाल कुर्ती वालों

को गिरफ्तार कर उन्हें लाल कपड़े उतारने का हुक्म दिया, लेकिन 'प्राण रहते नहीं उतारूँगा' कहने पर बन्दूक के कुन्दों से मार-मार कर उन्हें बेहोश कर दिया गया। कुछ को उनके घरों की ऊपरी मंजिल से नीचे फेंक दिया गया।

सन् 1931 ई0 में अंग्रेजों ने बादशाह खान को फिर गिरफ्तार कर लिया। पख्तून लोगों के विरुद्ध सरकारी दमन चक्र जारी रहा। इसके बावजूद खुदाई खिदमतगार आंदोलन शान्तिपूर्ण ढ़ंग से चलता रहा। तीन वर्ष की कैद के बाद बादशाह खान को छोड़ दिया गया लेकिन उन्हें सीमान्त प्रान्त और पंजाब जाने की इजाजत नहीं मिली। बादशाह खान उत्तरी भारत में रहकर बिहार की यात्रा पर गए जहाँ उन्होंने राजेन्द्र प्रसाद व अग्रणी कांग्रेसी स्वतन्त्रता सेनानियों से भेंट की। बाद में वे वर्धा गए और गांधी जी के साथ सेवाग्राम में रहे।

सन् 1934 के कांग्रेस के मुम्बई अधिवेशन में बादशाह खान से अध्यक्षता करने की पेशकश की गई किन्तु उन्हांेने नम्रता पूर्वक इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि वे एक साधारण सिपाही हैं और खुदाई खिदमतगार है।

अगस्त 1942 ई 0 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' प्रारम्भ हुआ। सीमान्त प्रान्त मंे यह आन्दोलन बड़े अनुशासित रूप में किया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945) के पश्चात 1945-46 में प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव हुए। मुस्लिम बाहुल्य सीमान्त पं्रात में मुस्लिम लीग पराजित हो गईं। खुदाई खिदमतगार चुनाव जीत गए। इसके बाद की राजनैतिक घटनाएँ तेजी से बदलीं। भारत विभाजन की हवा चल पड़ी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दो विपरीत धु्रव हो गए। अंग्रेजांे की साजिश के तहत कराये गए जनमत संग्रह के आधार पर उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (एन डब्लू एफ पी) को पाकिस्तान का हिस्सा बना दिया। भारत विभाजन से बादशाह खान बहुत दुखी हुए और उन्हें मर्मान्तक पीड़ा हुई।

स्वतन्त्रता के ठीक बाद पाकिस्तान सरकार ने उनको गिरफ्तार कर लिया। सन् 1962 ई0 में मानवाधिकार से सम्बन्धित संस्था 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि बादशह खान 1948 से ही लगभग निरन्तर जेल में रहे।

सन् 1964 ई0 में पाकिस्तान की सरकार ने बादशाह खान को इलाज के लिए लन्दन जाने की अनुमति दी। जहाँ से वे अफगानिस्तान चले गए और 1972 तक स्वनिर्वासित जीवन बिताया। इसी बीच 1969 ई0 में महात्मा गांधी की जन्म शताब्दी पर वे भारत आए। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार दिया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के निमन्त्रण पर वे पुनः 1980 तथा 1981 में भारत आए। उनके साहस, प्रेम और मानव सेवा को दृष्टिगत रखते हुए सन् 1987 में भारत सरकार ने बादशाह खान को सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' प्रदान किया। 20 जनवरी 1988 ई0 को 98 वर्ष की परिपक्व आयु में यह प्रकाशपुंज बुझ गया। भारत के स्वतन्त्रता

सेनानियों का प्रतिनिधि मंडल उनके अन्तिम संस्कार स्थल जलालाबाद अफगानिस्तान गया और दुखी व कृतज्ञ राष्ट्र (भारत) की ओर से उन्हें अन्तिम श्रद्धा°जलि दी।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दीजिए -

(क) बादशाह खान को सीमान्त गांधी क्यों कहा जाता है ?

(ख) 'हाफिजे कुरान' का क्या अर्थ है ?

(ग) खुदाई खिदमतगार के सदस्य क्या प्रतिज्ञा करते थे ?

(घ) गफ्फार खाँ को सर्वोच्च भारतीय नागरिक सम्मान कब मिला ?

2. निम्नलिखित में सही कथन के सम्मुख सही (√) तथा गलत कथन के सम्मुख गलत (ग्) का चिन्ह बनाइए।

(क) खान अब्दुल गफ्फार खाँ के विचारों पर परिवार के लोगांे का प्रभाव पड़ा।

(ख) गफ्फार खाँॅ अंग्रेजी सेना की नौकरी से निकाल दिए गए थे।

(ग) 'पख्तून' नामक समाचार पत्र अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होता था।

(घ) 'अलहिलाल' समाचार पत्र स्वतंत्रता, प्रजातंत्र व न्याय के प्रचार के लिये विख्यात था।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के चार सम्भावित उत्तर हैं जिनमें से केवल एक उत्तर सही है। सही उत्तर छाँटिए-

(क) गफ्फार खाँॅ ने मैट्रिक परीक्षा के लिए प्रवेश लिया -

(प) म्युनिसिपल बोर्ड हाईस्कूल में।

(पप) हडवर्ड्स मेमोरियल मिशन हाईस्कूल में।

(पपप) सेंट स्टीफेंस कालेज में ।

(पअ) मदरसा नदवतुल उलेमा लखनऊ में।

(ख) गफ्फार खाँ एक महान नेता की जन्मशताब्दी वर्ष पर भारत आए थे। वे नेता थे -

(1) लाला लाजपत राय (2) श्रीमती इन्दिरा गांधी

(3) डा0 राधाकृष्णन (4) महात्मा गांधी

4. अपने विद्यालय के पुस्तकालय से खान अब्दुल गफ्फार खाँ के जीवन चरित्र पर आधारित एक पुस्तक प्राप्त कीजिए तथा खुदाई खिदमतगार एवं लालकुर्ती के विषय में बीस पंक्तियों का लेख तैयार कीजिए।

पाठ - 31

चौधरी चरण सिंह

^' मेरे संस्कार उस गरीब किसान परिवार के संस्कार हैं जो धूल और कीचड़ के बीच एक छप्परनुमा झोपड़ी में रहता है, मैंने अपना बचपन उन किसानों के बीच बिताया है जो खेतों में नंगे बदन अपना पसीना बहाते हैं'

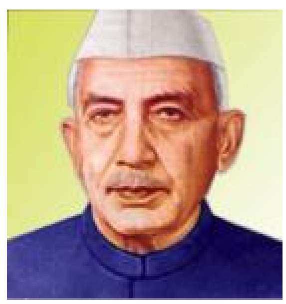

ये शब्द हैं चौधरी चरण सिंह के, जिनका जन्म एक साधारण परिवार में हुआ परन्तु जो भारत के प्रधानमंत्री के शिखर पद तक पहुँचे। इनका जन्म 23 दिसम्बर 1902 को उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में स्थित नूरपुर ग्राम में हुआ था। इनके पिता चौधरी मीर सिंह एक साधारण किसान थे। इनकी माँ का नाम नेत्र कौर था।

प्रारम्भिक शिक्षा जानी खुर्द गाँव में प्राप्त करने के बाद बालक चरण सिंह ने मेरठ के गवर्नमेन्ट हाईस्कूल में शिक्षा ग्रहण की। आगरा कालेज से इन्होंने विज्ञान विषय में स्नातक तथा इतिहास विषय में स्नातकोत्तर (एम0ए0) की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् उन्होंने मेरठ कालेज से कानून की उपाधि (एल0एल0बी) प्रथम श्रेणी में प्राप्त कर गाजियाबाद दीवानी अदालत में वकालत प्रारम्भ की।

आज़ादी के महासमर में-

अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता की लड़ाई में चौधरी चरण सिंह ने बढ़-चढ़ कर योगदान किया। 1930 में जब महात्मा गांधी ने डाँडी मार्च कर "नमक कानून तोड़ो आंदोलन" चलाया तब गाजियाबाद में यह बीड़ा उठाया नौजवान चरण सिंह ने। गाजियाबाद के लोनी

नामक गाँव में उन्होंने नमक बनाया। उन्हें नमक कानून तोड़ने के जुर्म में छः महीने की सजा सुनायी गयी। आजादी की लड़ाई में उनकी यह पहली जेल यात्रा थी।

9 अगस्त 1942 को भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ तथा गांधी जी ने देशवासियों से "करो या मरो" का आह्वान किया। ऐसे समय में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ संभाग में बगावत की बागडोर युवक चरण सिंह ने सँभाली। भूमिगत रहकर उन्होंने गाजियाबाद, हापुड़, मवाना, सरधना, बुलन्दशहर तथा आस-पास के गाँवों में क्रान्तिकारियों का गुप्त संगठन बनाया। इस संगठन ने अंग्रेजी प्रशासन को ठप्प करने की मुहिम चलायी।

कृषि और कृषकों के हित में किये गये कार्य-

15 अगस्त 1947 में देश आजाद हुआ। केन्द्र के साथ ही उत्तर प्रदेश में मंत्रिमंडल का गठन हुआ। इस मंत्रिमंडल में स्वायत्त शासन और स्वास्थ्य विभाग में सभा सचिव का दायित्व चौधरी चरण सिंह को मिला। उनकी छवि एक कुशल, कर्मठ और ईमानदार प्रशासक के रूप में थी। उन्हें जमींदारी उन्मूलन विधेयक तैयार करने का काम सौंपा गया। यह विधेयक एक जुलाई 1952 से लागू हुआ। इसकी प्रशंसा विदेशी विद्वानों ने भी की । इस विधेयक का सर्वाधिक लाभ दलितों और पिछड़े वर्गों को हुआ।

पटवारियों के शोषण से किसानों को मुक्ति दिलाकर चौधरी चरण सिंह ने लेखपालों की नियुक्ति की। 1954 में लागू चकबन्दी अधिनियम भी चौधरी चरण सिंह का एक क्रान्तिकारी कदम था। चकबन्दी से किसानों को यह लाभ हुआ कि उनकी फसलों की सुरक्षा तथा सिंचाई के लिये पानी का प्रबन्ध सुविधाजनक हो गया। इससे मानवश्रम की बचत तथा कृषि उपज में वृद्धि भी सम्भव हो सकी। इन्होंने इसी वर्ष उत्तर प्रदेश में भूमि संरक्षण कानून भी पारित कराया। इस योजना का लक्ष्य मिट्टी की प्रकृति के अनुरूप खादों का प्रयोग कर कृषि उपज में वृद्धि करना था। गरीब किसानों के हित में चौधरी चरण सिंह ने कृषि आपूर्ति संस्थानों की योजना चलाई। इस योजना के अन्तर्गत किसानों को सस्ती खाद-बीज आदि की सुविधा प्राप्त हुई।

कृषि मण्डियों में किसानों के शोषण को रोकने के लिए आजादी के बाद 1949 में जो मण्डी समिति कानून अस्तित्व में आया, वह भी चौधरी चरण सिंह के विचारों पर आधारित था।

मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री के रूप में चौधरी चरण सिंह -

1967 में इन्होंने कांग्रेस पार्टी को छोड़ दिया और 3 अप्रैल को विरोधी दलों की संयुक्त सरकार बनने पर ये पहली बार मुख्यमंत्री चुने गये। 1970 में ये दोबारा फिर उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री चुने गए।

1977 में आपात काल के बाद आम चुनाव हुये। चुनाव में जनता पार्टी केन्द्रीय सत्ता में आई। चौधरी साहब पहली बार लोक सभा के सदस्य बने। जनता पार्टी सरकार में वे पहले गृहमंत्री, बाद में 1979 में उप प्रधानमन्त्री तथा वित्त मंत्री बने।

15 जुलाई 1979 को माननीय मोरारजी देसाई के त्याग पत्र के बाद 28 जुलाई 1979 को चौधरी चरण सिंह ने इस देश के प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। प्रधानमंत्री का पद सँभालने के बाद, चौधरी चरण सिंह ने राष्ट्र के नाम एक संदेश में कहा-

'हमें गरीबी मिटाना है और प्रत्येक नागरिक के जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं के लिये यह सुनिश्चित करने से बेहतर कोई देशभक्तिपूर्ण लक्ष्य नहीं हो सकता कि कोई भी बालक भूखा नहीं सोए, किसी परिवार को अपने अगले दिन के भोजन की चिन्ता नहीं हो, और किसी भी भारतीय का भविष्य और क्षमताएँ कुपोषण के कारण अवरुद्ध न हो पाये'।

उन्होंने भारत के 33वें स्वतंत्रता दिवस पर ऐतिहासिक लाल किले पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया। लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहा 'राष्ट्र तभी सम्पन्न हो सकता है जब उसके ग्रामीण क्षेत्र का उन्नयन किया गया हो तथा ग्रामीण लोगों की क्रय शक्ति अधिक हो।

जातिवाद के विरोधी -

चौधरी चरण सिंह जातिवाद को भारतीय राष्ट्रीयता के लिये सबसे बड़ा खतरा मानते थे। उनका स्पष्ट विचार था कि जातिवाद के दुष्परिणाम के कारण हम भारतीयों ने सैकड़ों साल गुलामी का जुआ अपने कंधे पर ढोया।

1967 में मुख्यमन्त्री बनने के बाद चौधरी चरण सिंह ने एक शासकीय आदेश पारित करवा दिया कि जो संस्थाएं किसी जाति विशेष के नाम से चल रही हैं, उनका शासकीय अनुदान बन्द कर दिया जायेगा। इस आदेश के तुरन्त बाद अग्रवाल कालेज-महाराजा अग्रसेन कालेज में, रस्तोगी कालेज महाराजा हरिश्चन्द्र कालेज में और जाट कालेज- महर्षि दयानन्द और वैदिक कालेज जैसे नामों में बदल गए थे। ऐसे काम चौधरी चरण सिंह जैसे संकल्पशील और निर्भीक व्यक्ति ही कर सकते थे।

जातिवाद के दुष्परिणामों का विस्तृत ब्यौरा उनके लेख में मिलता है जो 'कास्टिज्म' (जातिवाद) उप-शीर्षक से उनकी पुस्तक 'इकानोमिक नाइटमेअर ऑफ इण्डिया इट्स कॉजेज एण्ड क्योर' में लिखा गया है।

ईमानदार नेता के रूप में -

चौधरी चरण सिंह ने जीवन में किसी भी क्षेत्र में भ्रष्टाचार को सहन नहीं किया। उनका जीवन एक खुली किताब था, जिस पर कोई दाग नहीं लगा।

जब इन्होंने 1970 में मुख्यमंत्री पद से त्याग पत्र देने की घोषणा की तब वे कानपुर में थे। उन्होंने वहीं से सरकारी गाड़ी लौटा दी और प्राइवेट वाहन द्वारा लखनऊ वापस आ गए।

साहित्यकार तथा लेखक के रूप में चौधरी चरण सिंह-

चौधरी चरण सिंह राजनैतिक नेता के साथ-साथ विचारक, लेखक तथा सुधारक भी थे। उन्हें हिन्दी तथा अंग्रेजी, दोनों ही भाषाओं पर अच्छा अधिकार था। इनकी पुस्तक

'इकोनॉमिक नाइटमेअर ऑफ इण्डिया इट्स कॉजेज एण्ड क्योर' (भारत की भयावह आर्थिक स्थिति, कारण और निदान) देश विदेश में चर्चित रही। अपनी पुस्तक 'लैण्ड रिफार्म्स इन यू0पी0 एण्ड दि कुलक्स' में इन्होंने उत्तर प्रदेश में भूमि सुधारों तथा जमींदारी उन्मूलन का विशद विवेचन किया है। 1941 में जब व्यक्तिगत सत्याग्रह के आन्दोलन के तहत बरेली सेंट्रल जेल में बंद थे, उस समय उन्होंने अपने बच्चों को पत्र लिखे जिनमें उन्हें शिष्टाचार की शिक्षा दी। इन पत्रों को बाद में 'शिष्टाचार' शीर्षक के अन्तर्गत पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।

इसके अतिरिक्त हमारी गरीबी कैसे मिटे, इण्डियाज इकोनामिक पॉलिसी, दि गांधियन ब्ल्यू प्रिंट, राष्ट्र की दशा, आर्थिक विकास के सवाल और बौद्धिक दिवालियापन, आदि लेख एवं पुस्तकें प्रसिद्ध हैं।

चरण सिंह मूलतः ग्रामीण भावना से जुड़े हुए भारत के पिछड़े वर्गों, किसानों के प्रिय और बेझिझक सच बोलने वाले नेता थे। भारत के ये जुझारू नेता 29 मई 1987 को हमेशा के लिए किसान घाट, नई दिल्ली पर चिरनिंद्रा में लीन हो गए। भारत अपने इस महान किसान नेता को सदा याद करता रहेगा।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए-

(क) चौधरी चरण सिंह का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

(ख) चौधरी साहब को किसानों का नेता क्यों कहा जाता है ?

(ग) चौधरी चरण सिंह को प्रथम जेल यात्रा क्यों करनी पड़ी ?

(घ) कृषि और कृषकों के लिए चौधरी चरण सिंह ने क्या कार्य किए ?

(ड.) 15 अगस्त पर चौधरी चरण सिंह ने देशवासियों को क्या संदेश दिया ?

(च) चौधरी चरण सिंह की लिखी पुस्तकों के नाम लिखिए।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

(क) चौधरी चरण सिंह ने......................कानून पारित कराया।

(ख) चौधरी साहब सन्.........................एवं.........................में उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री रहे।

(ग) ....के त्यागपत्र देने पर चौधरी चरण सिंह ने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली।

(घ) चौधरी चरण सिंह...................................के घोर विरोधी थे।

3. सही मिलान कीजिए-

(क) महात्मा गांधी ने डाँडी मार्च कर क. 1 जुलाई 1952 से लागू हुआ।

(ख) जमींदारी उन्मूलन विधेयक ख. 'करो या मरो' का आह्वान किया।

(ग) चौधरी चरण सिंह ग. नमक कानून तोड़ो आन्दोलन चलाया।

(घ) गांधी जी ने देशवासियों से घ. जातिवाद के घोर विरोधी थे।

पाठ-32

G4VVN7

चंद्रशेखर आजाद

दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे।

आजाद ही रहे हैं, आजाद ही रहेंगे।

ऐसी विचारधारा के समर्थक अमर शहीद चंद्रशेखर आजाद का जन्म 23 जुलाई, 1906 को अलीराजपुर जिले (मध्य प्रदेश) के भावरा ग्राम में हुआ था। इनके पिता पं0 सीताराम तिवारी मूलरूप से उन्नाव जिले (उ0प्र0) के बदरका ग्राम के रहने वाले थे। इनकी माता जगरानी देवी थीं। ये बचपन से ही न्यायप्रिय व उच्च विचारों वाले थे।

चंद्रशेखर का विद्यार्थी जीवन पाँच-छह वर्ष की अवस्था से आरंभ हो गया था। ये अपने बड़े भाई सुखदेव के साथ गाँव की पाठशाला में पढ़ने जाते थे। जब ये चैदह वर्ष के हुए तो माता-पिता से काशी जाकर शिक्षा ग्रहण करने का आग्रह किया परंतु माता-पिता की अनुमति न मिलने पर बिना बताए ही अध्ययन हेतु काशी चले गए। इनकी शिक्षा की व्यवस्था काशी के दानी-धर्मात्माओं द्वारा विद्यालय को दिए जा रहे अनुदान से हुई।

चंद्रशेखर बनारस में संस्कृत का अध्ययन कर रहे थे, उसी समय दिसम्बर 1917 में अंग्रेजी शासन द्वारा रॉलट एक्ट लाया गया। इस एक्ट द्वारा क्रांतिकारियों के दमन हेतु कानून बनाया गया था। गांधी जी के नेतृत्व में पूरे देश में रॉलट एक्ट का विरोध हो रहा था। वैशाखी के दिन 13 अप्रैल, सन् 1919 को रॉलट एक्ट के विरोध में अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सभा हो रही थी। इस सभा में बच्चे, बूढ़े और युवक सभी शामिल थे। सभा के दौरान जनरल डायर ने निहत्थे और शांतिपूर्ण सभा कर रहे लोगों पर, हथियार बंद सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दे दिया; जिससे सैकड़ों लोग हताहत हुए। पंजाब की इस घटना की जानकारी चंद्रशेखर को समाचार-पत्रों से मालूम हुई। अंग्रेजी शासन के इस अत्याचार के विरुद्ध किशोर चंद्रशेखर का खून खौल उठा। इन्होंने अंग्रेजी सरकार द्वारा अपने देशवासियों पर किए जा रहे अत्याचारों का प्रतिशोध लेने की मन में ठान ली। इस समय चंद्रशेखर की अवस्था मात्र चैदह वर्ष की थी।

सन् 1921 में गांधी जी के असहयोग आंदोलन के चलते पूरे देश में अंग्रेजी शासन के विरोध की लहर फैल गई। समस्त देशवासी अंग्रेजी शासन का तख्ता पलट करने को आतुर हो गए। लोग विदेशी कपड़ों व अन्य वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए उन्हें जलाने लगे। इस स्वदेशी आंदोलन के प्रभाव से चंद्रशेखर भी अछूते न रहे और आंदोलन में शामिल हो गए। जहाँ भी जुलूस व हड़तालें होतीं, चंद्रशेखर तत्काल वहाँ पहुँच जाते। बचपन की कठिन परिस्थितियों ने इन्हें कष्ट सहिष्णु, कठोर परिश्रमी व संघर्षशील बना दिया था।

सन् 1921 के अंत में ब्रिटेन के युवराज भारत-यात्रा पर आए। उनके आगमन का पूरे भारत में विरोध्ा किया गया। इसी क्रम में महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना के विरोध में बालक चंद्रशेखर ने बनारस के सरकारी

विद्यालय पर धरना दिया। इसके बाद एक जुलूस का नेतृत्व किया। जुलूस अपनी तीव्र गति से जब उत्साह, उमंग और जय-जयकार के साथ आगे बढ़ता जा रहा था, तभी पुलिस बल वहाँ आ पहुँचा। कुछ नवयुवक तो भाग गए किंतु उनके नेता और दो-तीन साहसी नवयुवक नारेबाजी करते रहे-भारत माता की जय। पुलिस ने सबसे पहले जुलूस का नेतृत्व करने वाले नवयुवक को पकड़ा, जिसका नाम चन्द्रशेखर था। बालक चंद्रशेखर अपनी गिरफ्तारी पर जरा भी व्याकुल नहीं हुए। पहले की ही तरह उनके मन में जोश, चेहरे पर प्रसन्नता दिख रही थी। उन्हें हवालात में डाल दिया गया। सर्दी का मौसम था और रात का समय। हाड़ कँपा देने वाली इस ठंड में पुलिस अधिकारी ने उन्हें ओढ़ने के लिए कंबल तक नहीं दिया, ताकि बालक ठंड से विचलित होकर उससे क्षमा माँगे। किंतु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। रात के दो बजे जब पुलिस अधिकारी बालक चन्द्रशेखर को देखने पहुँचा तो देखकर स्तब्ध रह गया। वह दंड-बैठक कर रहे थे; और उनका शरीर पसीने से नहाया हुआ था। अगले दिन बालक चंद्रशेखर को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मजिस्ट्रेट क्रांतिकारियों को कठोर दंड देने के लिए प्रसिद्ध था।

अदालत लगी थी। कटघरे में सुंदर, गठीला नौजवान खड़ा था।

मजिस्ट्रेट ने पूछा-" तुम्हारा नाम क्या है ?"

" आजाद ! " लड़के ने निडरता के साथ जवाब दिया।

इस बार मजिस्ट्रेट ने कड़कदार आवाज में पूछा-" पिता का नाम ?"

" स्वतंत्र! "

मजिस्ट्रेट अपने प्रश्नों का उत्तर ऐसी ललकारती आवाज में सुनकर दंग रह गया।

मजिस्ट्रेट ने फिर पूछा-" तुम्हारा घर कहाँ है ?"

" जेलखाना! "

निडर चंद्रशेखर के उत्तर को सुनकर मजिस्ट्रेट आगबबूला हो गया। झल्लाकर उसने बालक चंद्रशेखर को पंद्रह बेंतों की कठोर सजा सुनाई। हँसते-हँसते व भारत माता की जय बोलते हुए इन्होंने पंद्रह बेंतों की सजा झेली। इसी घटना ने बालक चंद्रशेखर को चंद्रशेखर आजाद बना दिया। चंद्रशेखर आजाद अब क्रांति के पथ पर अग्रसर हो चले। इनके विचारों और निर्भीकता की ख्याति चारों तरफ फैल गयी थी। इसे देखते हुए इन्हें ' हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' का सदस्य बनाया गया। इस संस्था का उद्देश्य न केवल स्वतंत्रता प्राप्त करना था, वरन् शोषण रहित प्रजातंत्र की स्थापना करना था।

काकोरी रेलवे स्टेशन के निकट 9 अगस्त, 1925 को सरकारी खजाने को लूटने की घटना में आजाद की महत्वूपर्ण भूमिका रही। इस लूट में दस लोग शामिल थे। इनके अधिकांश साथी पकड़े गए और कुछ को फाँसी की सजा दी गई; किंतु आजाद की छाया तक को पुलिस न छू सकी।

साइमन कमीशन के विरोध में सन् 1928 में हुए प्रदर्शन में पुलिस की मार से लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गई; जिसके प्रतिशोध के लिए पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या की योजना बनाई गई। इस योजना का नेतृत्व चंद्रशेखर आजाद ने किया। इस योजना में आजाद के साथ भगत सिंह एवं राजगुरू थे। साण्डर्स की हत्या के लिए अंग्रेजी शासन किसी को भी नहीं पकड़ सका। आजाद इस कार्य के बाद लाहौर से बाहर चले गए।

आजाद ने कालांतर में एक नए क्रांतिकारी दल का गठन किया जिसका नाम ' हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' रखा गया। आजाद इस संगठन के आजीवन सेनानायक रहे। वह सदैव अंग्रेज सरकार की आँख की किरकिरी बने रहे, किंतु अंग्रेज सरकार उन्हें कभी पकड़ न सकी।

वह क्रूर शुक्रवार का दिन 27 फरवरी, सन् 1931 को आया, जब आजाद अल्फ्रेड पार्क, इलाहाबाद में अपने क्रांतिकारी साथियों के साथ मंत्रणा कर रहे थे। अंग्रेजी शासन को उनके अल्फ्रेड पार्क में उपस्थित होने की सूचना मिली।

पूरा पार्क पुलिस द्वारा घेर लिया गया। चारों तरफ से गोलियाँ चल रही थीं। आजाद ने भी प्रत्युत्तर में गोली चलाई। उन्होंने अपने अन्य साथियों को सुरक्षित बाहर निकाल दिया और स्वयं पुलिस से मोर्चा लेते रहे। जब आजाद के पास एक ही गोली बची तो उन्होंने स्वयं की कनपटी पर गोली मारकर अपने जीवन की इतिश्री कर ली।

चंद्रशेखर आजाद ने पहले ही प्रतिज्ञा की थी कि वे कभी जीते जी अंग्रेजी शासन के हाथ नहीं आएँगे। अंत तक उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का मान रखा।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. चंद्रशेखर आजाद का जन्म स्थान भारत के किस राज्य में स्थित है ?

2. जलियाँवाला बाग कहाँ स्थित है ?

3. जलियाँवाला बाग कांड में किसने गोली चलाने का आदेश दिया था ?

4. आजाद ने किस क्रांतिकारी संस्था का गठन किया ?

5. चंद्रशेखर आजाद ने क्या प्रतिज्ञा की थी ?

6. मिलान कीजिए-

(क) जलियाँवाला बाग घटना	(अ) इलाहाबाद
(ख) अलीराजपुर	(ब) काकोरी
(ग) अल्फ्रेड पार्क	(स) अमृतसर
(घ) सरकारी खजाने की लूट	(द) मध्य प्रदेश

पाठ - 33

शहीद भगत सिंह

उस दिन सुबह 'वीरा' स्कूल के लिए कहकर घर से निकला। सन्ध्या हो गयी लेकिन घर नहीं लौटा। जलियाँवाला बाग की घटना से हम सभी दुःखी और घबराये हुए थे। काफी देर रात बीते वह गुमसुम सा घर आया । मैने कहा -"कहाँ गया था वीरा ? सब जगह तुझे ढँूढ़ा, चल फल खा ले। "वह फफक कर रो उठा। मैंने उसे आमतौर पर कभी रोते हुए नहीं देखा था। उसने अपनी नेकर की जेब से एक शीशी निकाली जिसमें मिट्टी भरी हुई थी। उसने कहा" मिट्टी नहीं अमरों यह शहीदों का खून है।" उस श्शीशी से वह रोज ख्ोलता, उसे चूमता और उसमें भरी हुई मिट्टी से तिलक लगाता, फिर स्कूल जाता।

- भगत सिंह की बड़ी बहन अमरो के संस्मरण

अमरो का यही वीरा आगे चलकर महान क्रान्तिकारी भगत सिंह के नाम से विख्यात हुआ। भगत सिंह का जन्म लायलपुर (जो अब पाकिस्तान मंे है) जिले में 27 सितम्बर 1907 को हुआ था। उस समय पूरे देश में अंग्रेजी श्शासन के खिलाफ विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। उनके पिता किशन सिंह अपने चारों भाइयों के साथ लाहौर के सेंट्रल जेल में बन्द थे।

माँ विद्यावती ने अत्यन्त लाड़-दुलार के साथ उनका पालन-पोषण किया। इस परिवार में संघर्ष और देश भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी। जिसका असर भगत सिंह पर भी पड़ा। इनकी बड़ी बहन का नाम अमरो था।

भगत सिंह बचपन से ही असाधारण किस्म के कार्य किया करते थे। एक बार वे अपने पिता के साथ कहीं जा रहे थे। रास्ते में ही पिता के एक घनिष्ठ मित्र मिल गये जो अपने खेत में बुवाई का काम कर रहे थे। मित्र को पाकर पिता उनसे हाल-चाल पूछने लगे। भगत सिंह वहीं खेत में छोटे-छोटे तिनके रोपने लगे। पिता के मित्र ने पूछा ‘‘यह क्या कर रहे हो भगत सिंह ?’’ बालक भगत सिंह का उत्तर था - ’’बन्दूकें बो रहा हूँ। ’’ भगत सिंह जैसे-जैसे बड़े होते गये उनकी विशिष्टताएँ उजागर होती गयीं।

इसी समय अंग्रेजी सरकार द्वारा एक कानून लाया गया - रौलेट एक्ट। इस कानून का पूरे देश में विरोध किया जा रहा था। इसी कानून के विरोद्द में 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में एक सभा हो रही थी। अचानक अंग्रेज पुलिस आयी और चारों ओर से प्रदर्शनकारियों को घेर लिया। पुलिस अधिकारी जनरल डायर ने गोली चलाने का आदेश दे दिया। सैकड़ों मासूम मारे गये। इस घटना ने पूरे राष्ट्र को झकझोर कर रख दिया। भगत सिंह के बालमन पर इस घटना का इतना गहरा असर पड़ा कि उन्हांेने बाग की मिट्टी लेकर देश के लिए बलिदान होने की शपथ ली।

आरम्भिक पढ़ाई पूरी करने के बाद भगत सिंह आगे की शिक्षा के लिए नेशनल कालेज लाहौर गये। वहाँ उनकी मुलाकात सुखदेव और यशपाल से हुई। तीनों मित्र बन गये और क्रान्तिकारी गतिविधियों में बढ़-चढ़कर भाग लेने लगे।

भगत सिंह जब बी0 ए0 में पढ़ रहे थे तभी उनके पिताजी ने उनके विवाह की चर्चा छेड़ी और भगत सिंह को एक पत्र लिखा। पत्र पढ़कर भगत सिंह बहुत दुःखी हुए और उन्होंने दोस्तों से कहा-

‘‘दोस्तांे मैं आपको बता दूँ कि अगर मेरी शादी गुलाम भारत में हुई तो मेरी दुल्हन सिर्फ मौत होगी ,बारात श्शवयात्रा बनेगी और बाराती होंगे शहीद।’’ पिताजी के पत्र का जवाब देते हुए उन्होंने लिखा ‘‘यह वक्त शादी का नहीं, देश हमें पुकार रहा है। मैंने तन मन और धन से राष्ट्र सेवा करने की सौगन्द्द खायी है। मुझे विवाह बन्धन में न बाँधे बल्कि आशीर्वाद दें कि मैं अपने आदर्श पर टिका रहँू।’’

सन 1926 में उन्होंने लाहौर में नौजवान सभा का गठन किया। इस सभा का उद्देश्य था -

स स्वतन्त्र भारत की स्थापना ।

स एक अखण्ड राष्ट्र के निर्माण के लिए देश के नौजवानों में देश भक्ति की भावना जाग्रत करना।

स आर्थिक सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्रों के आन्दोलनों में सहयोग प्रदान करना ।

स किसानों और मजदूरों को संगठित करना।

इसी बीच भगत सिंह की मुलाकात प्रसिद्ध क्रान्तिकारी एवं देश भक्त गणेशश्शंकर विद्यार्थी से कानपुर में हुई । गणेशश्शंकर विद्यार्थी उस समय अपनी प्रखर पत्रकारिता से जनमानस को उद्वेलित करने का काम कर रहे थे। भगत सिंह उनके विचारों से इतने प्रभावित हुए कि कानपुर में ही उनके साथ मिलकर क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन करने लगे। लेकिन दादी माँ की अस्वस्थता के कारण उन्हें लाहौर लौटना पड़ा ।

लाहौर में उस समय सारी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोसियेशन के बैनर तले संचालित हो रही थीं। भगत सिंह को एसोसियेशन का मंत्री बनाया गया। 30 अक्टूबर 1928 को लाहौर में साइमन कमीशन आने वाला था। भगत सिंह ने कमीशन के बहिष्कार की योजना बनायी । लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में साइमन कमीशन का डटकर विरोध किया गया। ‘‘साइमन वापस जाओ’’ और ‘‘इन्कलाब जिन्दाबाद’’ के नारे लगाये गये। निरीह प्रदर्शनकारियों पर अंग्रेज पुलिस ने बर्बरतापूर्वक लाठी चार्ज किया। लाला लाजपत राय के सिर में गंभीर चोटें आयीं जो बाद में उनकी मृत्यु का कारण बनीं। इस घटना से भगत सिंह व्यथित हो गये। आक्रोश में आकर उन्होंने पुलिस कमिश्नर सांडर्स की हत्या कर दी और लाहौर से अंग्रेजों को चकमा देते हुए भाग निकले।

अप्रैल 1929 में भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली की केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंका और गिरफ्तारी दी। इस धमाके के साथ उन्हांेने कुछ पर्चे भी फेंके। भगत सिंह और उनके साथियों पर साण्डर्स हत्याकाण्ड तथा असेम्बली बम काण्ड से सम्बन्धित मुकदमा लाहौर में चलाया गया। मुकदमे के दौरान उन्हंे और उनके साथियों को लाहौर के संेट्रल जेल में रखा गया। जेल मंे कैदियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। उन्हें प्राथमिक

सुविधाएँ और भोजन ठीक से नहीं दिया जाता था। भगत सिंह को यह बात ठीक नहीं लगी। उन्होंने इसके विरोध स्वरूप भूख हड़ताल शुरू कर दी। आखिर अंग्रेजी सरकार को उनके आगे झुकना पडा़ और कैदियों को बेतहर सुविधाएँ मिलने लगीं। 7 अक्टूबर 1930 को भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी की सजा सुनायी गयी। तीनांे क्रान्तिकारियों को 23 मार्च 1931 को फाँसी दे दी गयी।

उनकी शहादत की तिथि 23 मार्च को हमारा देश "शहीद दिवस" के रूप में मनाता है। उनके क्रांन्तिकारी विचार, दर्शन और शहादत को यह देश कभी नही भुला सकेगा।

कुछ यादंे: कुछ विचार:

1. बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है:-

असेम्बली में बम फेंकने के बाद जो पर्चे फेंके गये थे। उनका शीर्षक यही था। इस पर्चे में और भी कुछ था -

"आज फिर जब लोग साइमन कमीशन से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आँखे फैलाये हैं और इन टुकड़ों के लिए लोग आपस में झगड़ रहे हैं। विदेशी सरकार पब्लिक सेफ्टी बिल (सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक) और टे्रडर्स डिस्प्यूट्स बिल (औद्योगिक विवाद विधेयक) के रूप में अपने दमन को और भी कडा़ कर लेने का यत्न कर रही है। इसके साथ ही आने वाले अधिवेशन में 'प्रेस सैडिशन एक्ट' (अखबारों द्वारा राजद्रोह रोकने का कानून) जनता पर कसने की भी धमकी दी जा रही है।

जनता के प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वे इस पार्लियामेण्ट के पाखण्ड को छोड़कर अपने अपने निर्वाचन क्षेत्रों को लौट जायें और जनता को विदेशी दमन औरश्शोषण के विरुद्ध क्रान्ति के लिए तैयार करें।"

2. क्रान्ति -

‘‘क्रान्ति से हमारा आशय खून खराबा नहीं। क्रान्ति का विरोध करने वाले लोग केवल पिस्तौल, बम, तलवार और रक्तपात को ही क्रान्ति का नाम देते हैं परन्तु क्रान्ति का अभिप्राय यह नहीं है। क्रांति के पीछे की वास्तविक शक्ति जनता द्वारा समाज की आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन करने की इच्छा ही होती है। ’’

3. प्रख्यात गांधीवादी श्री पट्टभिरमैया -

‘‘उस समय भगत सिंह का नाम सारे देश में गाँधीजी की तरह ही लोकप्रिय हो गया था।’’

4. बालकृष्ण शर्मा नवीन:-

‘‘किसी भी देश का युवक जितना सच्चा चरित्रवान, संतोषी, आदर्शवादी, उत्सुक, और निखरा हुआ तप्त स्वर्ण हो सकता है, भगत सिंह वैसा ही है। यदि भगत सिंह लार्ड इरविन का पुत्र होता तो हमें विश्वास है वे भी उसे प्यार करते । वह बड़ा ही सुसंस्कृत भोला-भाला, नौजवान है। वह हमारी वत्सलता, स्नेह, अपार वात्सल्य और प्यार का व्यक्त रूप है।’’

एक और बेबे (माँ)

जेल में जो महिला कर्मचारी भगत सिंह की कोठरी की सफाई करने जाती थी उसे भगत सिंह प्यार से बेबे कहते थे। आप इसे बेबे क्यों कहते है ? एक दिन किसी जेल अधिकारी ने पूछा तो वे बोले-जीवन में सिर्फ दो व्यक्तियों ने ही मेरी गंदगी उठाने का काम किया है । एक बचपन में मेरी माँ ने और जवानी में इस माँ ने। इसलिए दोनांे माताओं को प्यार से मैं बेबे कहता हँू।

फाँसी से एक दिन पहले जेलर खान बहादुर अकबर अली ने उनसे पूछा- आपकी कोई खास इच्छा हो तो बताइए , मैं उसे पूरा करने की कोशिश करूँगा।

भगत सिंह ने कहा-हाँ, मेरी एक खास इच्छा है और उसे आप ही पूरा कर सकते हैं। मैं बेबे के हाथ की रोटी खाना चाहता हूँ।’’

जेलर ने जब यह बात उस सफाई कर्मचारी से कही तो वह स्तब्ध रह गयी। उसने भगत सिंह से कहा "सरदार जी मेरे हाथ ऐसे नहीं हैं कि उनसे बनी रोटी आप खायें।"

भगत सिंह ने प्यार से उसके दोनों कन्धांे को थपथपाते हुए कहा "माँ जिन हाथों से बच्चों का मल साफ करती है उन्हीं से तो खाना बनाती है। बेबे तुम चिन्ता मत करो और रोटी बनाओ।"

अभ्यास

1. भगत सिंह ने श्शीशी में भरी मिटटी को शहीदों का खून क्यों कहा ?

2. भगत सिंह शादी की खबर सुनकर क्यों दुखी हुए और उन्होंने अपने दोस्तों से क्या कहा ?

3. नौजवान सभा का उद्देश्य क्या था ?

4. भगत सिंह ने जेल में भूख हड़ताल क्यों की ?

5. क्रान्ति से भगत सिंह का आशय क्या था ?

6. सही कथन पर सही (√) और असत्य कथन पर गलत (ग्) चिõ लगाइए

1. 23 मार्च को शहीद दिवस मनाया जाता है।

2. भगत सिंह और सुखदेव ने असेम्बली में बम फेंका।

3. भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त को फाँसी की सजा सुनाई गई।

4. गणेश शंकर विद्यार्थीने नौजवान सभा का गठन किया।

5. भगत सिंह की बड़ी बहन का नाम अमरो था ।

7. इन वाक्यों का क्या आशय है ?

1. जिन्दगी बहुत खूबसूरत है मगर उसे और अधिक खूबसूरत बनाया जाना चाहिए।

2. क्रांति से हमारा आशय खूनखराबा नहीं है।

3. बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है।

8. स्वयं कीजिए -

भगत सिंह ने जेल मंे रहते हुए बहुत सारे पत्र अपने सगे-सम्बन्धियों को लिखे हैं। इन पत्रों का संकलन अब पुस्तक के रूप में छप चुका है अपने शिक्षक/शिक्षिका से पता कीजिए और पढ़िए।

पाठ - 34

सरफरोशी की तमन्ना

9 अगस्त 1925 को घटित एक छोटी सी घटना के लिए 18 महीने मुकदमा चला। इस मुकदमे के फैसले मंे मामूली से दोष के लिए भारत के नौनिहालों को फाँसी जैसी क्रूरतम सजा सुनाई गई। यह अंग्रेजों के अत्याचार की पराकाष्ठा थी किन्तु जिन्हें यह सजा सुनाई गयी उन्होंने इस सजा को लापरवाही से सुना और हँस दिए । गोया उन्हें कुछ हुआ ही नहीं। वे पूरे जोश से निम्नांकित पंक्तियाँ गाते चल दिए।

'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजुए -कातिल में है।

Hारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के आरम्भिक दिनों में हर भारतीय युवक के हृदय में अंग्रेजी शासन एवं उसके अत्याचार के विरुद्ध चिंगारी सुलग रही थी। अनेक युवकों ने सशस्त्र क्रान्ति का मार्ग अपनाया ।

सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए पर्याप्त हथियार खरीदना आवश्यक था और हथियारों की खरीद के लिए धन की आवश्यकता थी। बहुत विचार विमर्श के बाद इनके द्वारा सरकारी खजाना लूटने का निर्णय लिया गया। सहारनपुर से लखनऊ जाने वाली गाड़ी के द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में कुछ जवान बैठे थे। काकोरी स्टेशन से एक डेढ़ मील गाड़ी बढ़ी ही थी कि क्रान्तिकारियों ने गाड़ी रोक ली। सभी यात्रियों को समझा दिया गया कि वे डरें नहीं क्योंकि उनका उद्देश्य यात्रियों को तंग करने का नहींए सिर्फ सरकारी खजाना लूटना है। यह घटना 1925 मंे काकोरी नामक स्थान पर घटी। अतः इसे ष्काकोरी काण्डष् के नाम से जाना जाता है।

नामरू राम प्रसाद विस्मिल

जन्मरू 1897 ई0

स्थानरू शाहजहाँपुर

मृत्युरू फाँसी 19दिसम्बर 1927ई0

काकोरी काण्ड से अंग्रेज शासकों मंे खलबली मच गई। उन्हें विश्वास था कि यह क्रान्तिकारी जत्थे का काम है। क्रान्तिकारियों को पकड़ने के लिए जाँच शुरू की गयी। शाहजहाँपुर में कुछ नोट पकड़े गये। गिरफ्तारियाँ की जाने लगीं। राम प्रसाद बिस्मिल के साथ कुल बाइस क्र्रान्तिकारियों पर मुकदमा चलाया गया। क्रान्तिकारी रामप्रसाद बचपन में बड़े नटखट स्वभाव के थे। आरम्भ में इनका मन पढा़ई में नहीं लगता था। इनकी प्रवृत्ति को देखकर इनके पिता पं. मुरलीधर तिवारी इन्हें किसी व्यवसाय मंे लगाना चाहते थे। माँ इन्हें पढ़ाना चाहती थी। माँ के प्रभाव से इन्हें अंग्रेजी पढ़ने का अवसर मिला। इनके पड़ोस मंे एक पुजारी थे वे बड़े ही सच्चरित्र व्यक्ति थे। इनका प्रभाव बालक राम प्रसाद पर पडा़। वे व्यायाम और अध्ययन में रुचि लेने लगे। इसी समय आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन करके इनके जीवन के इतिहास में एक नया मोड़ आ गया और जीवन की दिशा बदल गई। रामप्रसाद बिस्मिल जब नवीं कक्षा में पढ़ते थे तभी लखनऊ मंे अखिल भारतीय कांग्रेस के सम्मेलन में गये। यहाँ उनका परिचय कई क्रान्तिकारियों से हुआ। अपने मित्र की सहायता से स्वतन्त्रता के लिए कार्य कर रही क्रान्तिकारियों की एक गुप्त संस्था के सदस्य बन गये। इन्हांेने एक संगठन की स्थापना की जिसका नाम ‘हिन्दुस्तानी रिपब्लिकन एसोसिएशन’ था। इसकी बागडोर रामप्रसाद बिस्मिल के बाद चन्द्र शेखर आजाद के हाथ में आई। आजाद ने इसका नाम ‘हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन’ रख दिया ।

राम प्रसाद बिस्मिल क्रान्तिकारी होने के साथ-साथ लेखक भी थे। इन्होंने अपनी पहली पुस्तक “अमेरिका को स्वतन्त्रता कैसे मिली” का प्रकाशन कराया। इसके अलावा देशवासियों के नाम सन्देश, बोलशेविकों की करतूत, मन की लहर, कैथेराइन,स्वदेशी रंग आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

काकोरी काण्ड में जिन बाईस लोगों पर मुकदमा चलाया गया और सजा सुनायी गई उसमंे कुछ को कालापानी, कठोर कारावास के साथ ही रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खाँ, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा ठाकुर रोशन सिंह को फाँसी की सजा हुई ।

पं. राम प्रसाद को गोरखपुर जेल में 19 दिसम्बर को फाँसी हुई। फाँसी के पहले वाली शाम 18 दिसम्बर जब उन्हें दूध पीने को दिया गया तो उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि

अब तो माता (भारतमाता) का दूध पीऊँगा। उन्होंने अपनी माँ को एक पत्र लिखा। जिसमें देशवासियों के नाम सन्देश भेजा और फाँसी की प्रतीक्षा में बैठ गए।
क्रांतिकारी राम प्रसाद बिस्मिल से उनके माता-पिता जेल में मिलने गये। उन्हें देखकर बिस्मिल की आँखों में आँसू आ गए। उनकी आँखों में आँसू देखकर माँ ने कहा 'यह क्या ? क्या तुम्हारा इन्कलाब खत्म हो गया', मेरे बेटे से अंग्रेज सरकार काँपती थी, इसलिए मैं गर्व से सिर उठा कर चलती थी पर फाँसी की सजा सुन कर तुम बच्चों की तरह रो रहे हो''
''माँ तुम जानती हो मैं कायर नहीं। मैं मृत्यु से भी नहीं डरता । मेरी आँखों में आँसू तो इसलिए है कि तुम जैसी माँ फिर कहाँ पाऊँगा। ''बिस्मिल ने उत्तर दिया''
जब फाँसी के तख्ते पर ले जाने वाले आये तो वे 'वन्देमातरम' भारतमाता की जय कहते हुए तुरन्त उठ कर चल दिए। चलते हुए कहा -
मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे

बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरज़ू रहे।

जब तक कि तन मंे जान, रगों में लहू रहे

तेरा ही जिक्रे यार तेरी जुस्तुजू रहे।

फाँसी के तख्ते पर खड़े होकर आपने कहा -
'मैं ब्रिटिश साम्राज्य का पतन चाहता हूँ'' फिर उन्हांेने एक शेर पढ़ा -
''अब न अहले वलवले हैं और न अरमानांे की भीड़
एक मिट जाने की हसरत, अब दिले बिस्मिल में है।''
इसके बाद प्रार्थना कर के मंत्रो का जाप करते हुए गोरखपुर के जेल में वे फाँसी के फंदे पर झूल गए।
आजादी की लड़ाई मंे जिन लोगों ने महŸवपूर्ण योगदान दिया उनमें अशफाक उल्ला खाँ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अशफाक उल्ला खाँ शाहजहाँपुर के रहने वाले थे। वे तैराकी घुड़सवारी क्रिकेट, हॉकी खेलने तथा बन्दूक चलाने में घर ही में प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। पं0 रामप्रसाद से इनकी बचपन से ही दोस्ती थी। अशफाक उल्ला खाँ ने रामप्रसाद से क्रान्तिकारी कार्य में शामिल होने की इच्छा प्रगट की। उनके बहुत आग्रह पर उन्हें भी क्रान्तिकारी आन्दोलन मंे शामिल कर लिया। अशफाक उल्ला कवि भी थे। फाँसी के कुछ घंटे पूर्व उन्होंने लिखा था।-

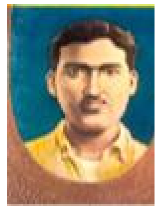

अशफाक उल्ला खाँ

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो बस यह
रख दे कोई जरा सी खाके वतन कफन मंे।

(खाक-ए-वतन=वतन की मिट्टी)

अशफाक उल्ला खाँ को फैजाबाद जिले में 19 दिसम्बर को फाँसी हुई। वे बहुत खुशी के साथ, कुरान शरीफ का बस्ता कंधे से टाँगे हाजियों की भाँति कलमा पढ़ते फाँसी के तख्ते के पास गये। तख्ते को चूमा और लोगांे से कहा - ''मेरे हाथ इन्सानी खून से कभी नहीं रंगे, मेरे ऊपर जो इल्जाम लगाया गया वह गलत है, खुदा के यहाँ मेरा इन्साफ होगा''। इसके बाद उनके गले में फंदा पड़ा और खुदा का नाम लेते हुए वह इस दुनिया से कूच कर गये।

काकोरी काण्ड मे फाँसी पर चढ़ने वाले शहीदों मंे राजेन्द्र लाहिड़ी भी थे। राजेन्द्र लाहिड़ी पहले क्रान्तिकारी सान्याल बाबू के दल में थे, किन्तु जब अनुशीलन दल हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक संघ में मिल गया उस समय राजेन्द्र बाबू बनारस के डिस्ट्रिक्ट आर्गनाइजर नियुक्त हुए। वे प्रान्तीय कमेटी के सदस्य भी हुए।

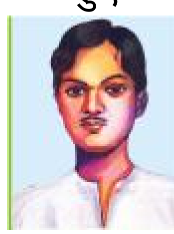

राजेन्द्र लाहिड़ी

राजेन्द्र लाहिड़ी को 17 दिसम्बर 1927 को गोण्डा जेल में फाँसी दी गई। 14 दिसम्बर को उनके द्वारा लिखे गये पत्र का अंश -

देश की बलिवेदी को हमारे रक्त की आवश्यकता है। मृत्यु क्या है ? जीवन की दूसरी दिशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसलिए मनुष्य मृत्यु से दुःख और भय क्यों माने ? यह उतनी ही स्वाभाविक अवस्था है जितना प्रातः कालीन सूर्य का उदय होना । यदि यह सच है कि इतिहास पलटा खाया करता है तो मैं समझता हूँ कि हमारी मृत्यु व्यर्थ न जायेगी, सबको मेरा नमस्कार-

- अन्तिम नमस्कार

क्रान्तिकारी रोशन सिंह को फाँसी होने का अन्देशा किसी को नहीं था, परन्तु फाँसी की सजा सुनकर भी उन्होंने जिस धैर्य, साहस और शौर्य का प्रदर्शन किया उसे देखकर सभी दंग रह गए।

ठाकुर रोशन सिंह शाहजहाँपुर जिले के नवादा नामक ग्राम के रहने वाले थे। बचपन से ही वे दौड़ धूप करने मंे बहुत आगे थे। असहयोग आन्दोलन के आरम्भ से ही उन्हांेने इसमें कार्य करना शुरू कर दिया और शाहजहाँपुर एवं बरेली जिले के गाँवों में घूम-घूम कर इस आन्दोलन का प्रचार करने लगे।

ठाकुर रोशन सिंह अंग्रेजी का मामूली ज्ञान रखते थे, किन्तु हिन्दी तथा उर्दू अच्छी तरह जानते थे। जेल से फाँसी के तख्ते तक बराबर उनका आचरण एक निभर्ीक पुरुष की भाँति था। फाँसी के छः दिन पहले उन्होंने अपने मित्र को पत्र मंे लिखा“ मेरी मौत किसी प्रकार अफसोस करने लायक नहीं है। मेरा पूरा विश्वास है कि दुनिया की कष्ट भरी यात्रा को समाप्त करके मैं अब आराम की जिन्दगी के लिए जा रहा हँू। हमारे शास्त्रों में लिखा है जो आदमी धर्मयुद्ध में प्राण देता है उसकी वही गति होती है जो जंगल में रह कर तपस्या करने वालों की ।

रोशन सिंह

जिन्दगी जिन्दादिली को जान-ए-रोशन
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं।
आखिरी नमस्ते
आपका रोशन

फाँसी के दिन श्री रोशन सिंह पहले ही तैयार बैठे थे। जैसे ही इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट जेल के जेलर का बुलावा आया आप गीता हाथ में लिए मुस्कराते हुए चल पड़े। फाँसी पर चढ़ते ही उन्हांेने वन्देमात्रम का नाद किया और ओऽम् का स्मरण करते हुए शहीद हो गए।

हमारे देश के शहीद भारत के आकाश में देश-प्रेम, बलिदान एवं क्रान्ति के ऐसे नक्षत्र हैं जो सदियों तक हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे और नित नव उत्साह का संचार करते रहेंगे-

मरते ‘बिस्मिल’, रोशन, लहरी, अशफाक अत्याचार से।

होंगे पैदा सैकड़ों इनके रुधिर की धार से ।

अभ्यास-प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. काकोरी काण्ड का उद्देश्य क्या था?

2. फाँसी की सजा किन क्रान्तिकारियों को दी गई?

3. रामप्रसाद बिस्मिल माँ को देखकर क्यों रोए ?

2. सही मिलान कीजिए-

क. काकोरी काण्ड में क्रान्तिकारी ठाकुर रोशन सिंह को क. कुल 22 लोगों पर मुकदमा चला।

ख. काकोरी काण्ड में ख. इलाहाबाद जिले में फाँसी दी गई।

3. सही (√) अथवा गलत (ग्) का निशान लगाइए -

1. अशफाक उल्ला, रामप्रसाद के बचपन से मित्र थे।

2. राजेन्द्र लाहिडी़ फाँसी की सजा सुनकर डर गये।

3. ठाकुर रोशन सिंह दौड़ने-धूपने के काम में आगे थे।

योग्यता विस्तार -

स स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए शहीद क्रन्तिकारियों की सूची बनाएँ।

स काकोरी काण्ड से सम्बन्धित अन्य क्रान्तिकारियों मंे से किन्हीं दो के विषय में जानकारी शिक्षक अथवा अभिभावक से प्राप्त करें और अपनी पुस्तिका मंे लिखंे।

राजेन्द्र लाहिड़ी

अशफाक उल्ला खाँ

पाठ - 35

हमारे वैज्ञानिक

हम जब भी विज्ञान, वैज्ञानिक तथा स्वचालित मशीनी वस्तुओं की चर्चा करते हैं तो हमारा ध्यान विदेशों पर केन्द्रित हो जाता है। क्यों ? दरअसल, हम विज्ञान को यूरोप की देन समझते हैं। हम उन महत्त्वपूर्ण योगदानों को भूल जाते हैं जिन्हें देश की प्रगति के लिए भारतीय वैज्ञानिकों ने दिया है। विज्ञान की प्रगति के लिए भारतीय वैज्ञानिकों के योगदान का सिलसिला यूरोपियों के भारत आगमन से भी सैकड़ों वर्ष पहले से चला आ रहा है।
भारत में विज्ञान का स्वर्णिम काल 400 वर्ष ईसा पूर्व से लेकर छठी तथा सातवीं शताब्दी तक था। पाँचवीं शताब्दी में हमारे देश ने दुनिया को शून्य का व्यावहारिक प्रयोग बताया। इसके अतिरिक्त खगोल शास्त्र, प्रकृति विज्ञान के क्षेत्र में महŸवपूर्ण कार्य किए गए। स्वतंत्रता के बाद देश ने विज्ञान के क्षेत्र में महŸवपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल कीं।
आइए, विज्ञान के क्षेत्र में भी महŸवपूर्ण योगदान देने वाले ऐसे ही कुछ भारतीय वैज्ञानिकों के विषय में जानें।

सर सी0वी0 रमन

सी0वी0रमन

नोबेल पुस्कार क्या और किसको ?

यह अन्तरराष्ट्रीय पुरस्कार है। यह स्वीडन के महान वैज्ञानिक अल्फ्रेड नोबेल की स्मृति में प्रतिवर्ष विभिन्न क्षेत्रों में अभूतपूर्व खोजांे, आविष्कारों या योगदानों के लिए दिया जाता है, ये क्षेत्र हैं:-

1. चिकित्साशास्त्र, 2. भौतिक विज्ञान 3. रसायन विज्ञान

4. साहित्य 5. शान्ति 6. अर्थशास्त्र

हमारे देश में कई वर्षों से 28 फरवरी 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन विद्यालयों एवं अन्य संस्थाओं में विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्रों में विशिष्ट योगदान के लिए लोग पुरस्कृत किए जाते है। जानते हैं क्यों ? क्योंकि इसी दिन सन् 1928 में सर सी0वी0 रमन ने सस्ते सरल उपकरणों का प्रयोग करके एक महŸवपूर्ण खोज की। इस खोज को 'रमन इफेक्ट' के नाम से जाना जाता है इस महŸवपूर्ण खोज के लिए रमन को अन्तरराष्ट्रीय नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान विश्व के वैज्ञानिकों के लिए नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के लिए गर्व की बात थी।

महान वैज्ञानिक सर सी0वी0 रमन का पूरा नाम चन्द्रशेखर वेंकट रमन है। इनका जन्म 7 नवम्बर सन् 1888 में तमिलनाडु प्रांत के तिरूचरापल्ली नामक नगर में हुआ था। इनके पिता चन्द्रशेखर एक कॉलेज में प्राध्यापक थे। रमन के पिता को ज्योतिषशास्त्र और संगीत में बहुत रुचि थी।

वेंकट रमन की आरम्भिक पढ़ाई जिस विद्यालय में हुई वह समुद्र के किनारे स्थित था। उन्हें अपनी कक्षा की खिड़की से बाहर समुद्र की अगाध जलराशि दिखाई देती थी। समुद्र के जल के नीलेपन की कल्पना में वे प्रायः ख्रो जाते थे। बाद में समुद्र के पानी का यही नीलापन उनकी वैज्ञानिक खोज का कारण बना। रमन की पूरी पढ़ाई अपने देश में ही हुई। इन्हांेने चेन्नई के प्रेसीडेंसी कालेज से एम0 ए0 की डिग्री प्राप्त की।

अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद रमन ने लेखा विभाग की परीक्षा उत्तीर्ण की। इनकी नियुक्ति कोलकाता में डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल के पद पर हुई। शीघ्र ही इस पद से त्यागपत्र देकर रमन 'कोलकाता विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। एक बार वेंकट रमन कोलकाता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में लंदन में आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने गए। वहाँ से जब वे लौट रहे थे तो समुद्र का पानी देखकर पुनः सोचने लगे कि आखिर समुद्र के पानी में नीलापन क्यों है ?

आप बता सकते हैं कि पत्ती का रंग हरा तथा गुलाब की पंखुड़ी का रंग लाल क्यों होता है ? आइये जानंे - रमन जी ने बताया कि विभिन्न रंगों की वस्तुओं का दिखाई देना सूर्य की किरणों के कारण होता हैं सूर्य की किरणों में सात रंग होते हैं। बैगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला नारंगी और लाल। जब किसी वस्तु पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो वस्तु से टकराकर एक रंग की किरण वापस लौटती है जो हमें दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि वस्तु हमें रंगीन दिखाई पड़ती है। सूर्य की किरणों के शेष रंगों को वह वस्तु अवशोषित कर लेती है।

सर सी0 वी0 रमन ने अपने वैज्ञानिक शोध से यह पता लगाया कि यदि प्रकाश पारदर्शी माध्यम से गुजरेगा तो उसकी प्रकृति में बदलाव आ जाएगा। यही कारण है कि सूर्य की किरणों के प्रकाश को पानी छितरा देता है या परावर्तित कर देता है। इसीलिए समुद्र के पानी का रंग नीला दिखायी पड़ता है। सूर्य के प्रकाश के इस प्रभाव को 'रमन इफेक्ट' के

नाम से जाना जाता है। वेंकट रमन की इस महŸवपूर्ण खोज के कारण उन्हें वर्ष 1930 में भौतिकी के क्षेत्र में अन्तरराष्ट्रीय नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

सर सी0वी0 रमन ने सन् 1943 में बंगलोर के निकट रमन इन्स्टीट्यूट के नाम से एक संस्था की स्थापना की। इस संस्था में वे 20 नवम्बर सन् 1970 में अपनी मृत्यु तक बराबर कार्य करते रहे।

‘‘ विज्ञान का सार उपकरण नहीं बल्कि स्वतंत्र सोच विचार और परिश्रम है’’

-सी0वी0रमन

डा0 होमी जहाँगीर भाभा

परमाणु ऊर्जा का उपयोग, इसका बड़े पैमाने पर उत्पादन, अंतरिक्ष में विद्यमान किरणों के रहस्य की जानकारी को हम सभी तक पहुँचाने का श्रेय हमारे देश के महान वैज्ञानिक डॉ0 भाभा को है। डॉ0 भाभा के इन कार्यों से भारत का नाम विश्व में गौरवान्वित हुआ है। डा0 होमी जहाँगीर भाभा का जन्म 30 अक्टूबर सन् 1909 में मुम्बई के एक पारसी परिवार में हुआ था। इन्होंने अपनी इण्टरमीडिएट तक की पढ़ाई मुम्बई मंे ही पूर्ण की। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए डॉ0 भाभा विदेश चले गए। डॉ0 भाभा ने इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से सन् 1930 में बी0-एससी0 की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा यहीं से 1934 में पीएच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। डा0 भाभा ने रोम तथा स्विट्जरलैण्ड देशों का भ्रमण करके गणित का विशेष अध्ययन भी किया। वर्ष 1940 में वह अपनी शिक्षा पूरी करके भारत वापस लौट आए।

डॉ0 भाभा ने बंगलौर (बंगलुरु) में स्थित इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साइंस नामक संस्था में कार्य करना आरम्भ किया। इस संस्था में वह अंतरिक्ष किरणों पर शोध करने लगे। डॉ0 भाभा ने अपने वैज्ञानिक शोध से बताया कि वाह्य अंतरिक्ष से आने वाली किरणों के कण बहुत छोटे-छोटे और तेज गति से चलने वाले होते हैं। जब ये कण पृथ्वी के वायुमण्डल में प्रवेश करते हैं तो वे हवा में मौजूद परमाणुओं से तेजी से टकराते हैं। इस टक्कर से परमाणु में उपस्थित इलेक्ट्रान इससे अलग हो जाते हैं। इन अलग हुए इलेक्ट्रान में डॉ0 भाभा ने एक और कण की उपस्थिति बतायी जिसे उन्होंने ‘ मेसन’ नाम दिया।

इसे जानिए-

प्रत्येक वस्तु छोटे-छोटे परमाणु से मिलकर बनी होती है। इस परमाणु की नाभि में प्रोटान और न्यूट्रान के कण होते हैं तथा नाभि के चारों ओर इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं। प्रोटान, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान में ऊर्जा की मात्रा अधिक होती है।

इस प्रकार भारत के इस महान भौतिक विज्ञानी ने दुनिया को अंतरिक्ष की इन किरणों के रहस्यों से अवगत कराया।

देश की स्वतन्त्रता के बाद सन् 1948 में परमाणु शक्ति आयोग की स्थापना की गयी। डॉ0 भाभा इस आयोग के चेयरमैन बनाये गए। तब से देश में आणविक ऊर्जा के प्रयोग और

परीक्षणों ने जोर पकड़ा। भाभा के कुशल निर्देशन में अप्सरा, सिरस तथा जरलीना नामों से तीन परमाणविक रिएक्टरों की स्थापना हुई। वर्ष 1963 में मुम्बई के पास ट्राम्बे में परमाणु बिजली घर की स्थापना भी डॉ0 भाभा के निर्देशन में हुई। इन रिएक्टरों तथा बिजली घरों से पर्याप्त मात्रा में बिजली का उत्पादन आरम्भ हो गया। 18 मई सन् 1974 में राजस्थान के पोखरण नामक स्थान में शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए अणु विस्फोट किया गया। इस विस्फोट परीक्षण के उपरान्त विश्व में भारत छठा राष्ट्र था जिसने नाभिकीय परिवार में शामिल होने का गौरव प्राप्त किया।

पद्मभूषण: यह पुरस्कार किसी भी क्षेत्र में विशिष्ट और उल्लेखनीय सेवा के लिए प्रदान किया जाता है। इसमें सरकारी कर्मचारी द्वारा की गई सेवा भी शामिल हैं।

विज्ञान के क्षेत्र में भाभा के महŸवपूर्ण योगदान के कारण इन्हें सन् 1942 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय द्वारा ‘एडमस’ तथा 1948 में ‘हाकिंस’ पुरस्कार प्राप्त हुआ। वर्ष 1954 में भारत के राष्ट्रपति ने डा0 भाभा को पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया। डा0 होमी जहाँगीर भाभा की मृत्यु 24 जनवरी सन् 1966 को विदेश यात्रा के दौरान विमान दुर्घटना में हो गयी। डा0 भाभा की मृत्यु के बाद ट्राम्बे का नाम बदल कर भाभा एटामिक रिसर्च सेन्टर रखा गया। डा0 भाभा के निर्देशन में स्थापित संस्थानों में आज भारतीय वैज्ञानिक शोध कार्य करके डॉ0 भाभा के कार्यक्रमों को निरन्तर आगे बढ़ा रहे हैं।

ए0 पी0 जे0 अब्दुल कलाम

‘देश की वाह्य आक्रमण से रक्षा के लिए ‘अग्नि’ और पृथ्वी नाम की ‘मारक’ मिसाइलें महान वैज्ञानिक अब्दुल कलाम की देन है। विज्ञान के क्षेत्र में महान उपलब्धि के कारण कलाम को देश के सर्वोच्च सम्मान ‘भारत रत्न’ से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान उनके प्रति जनता के आदर और प्रेम का प्रतीक है।

अब्दुल कलाम का पूरा नाम अबुल पाकिर जैनुलआबदीन अब्दुल कलाम है। इनका जन्म तमिलनाडु प्रांत के रामेश्वरम् में हुआ। इनके पिता जैनुल आबदीन एक मध्यम वर्गीय परिवार से सम्बन्धित थे। कलाम ने अपनी आरम्भिक शिक्षा रामेश्वरम् के प्राथमिक विद्यालय में ही पूरी की तथा तमिलनाडु से ही बी0-एससी0 की परीक्षा उत्तीर्ण की। मद्रास इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालाजी चेन्नई से इन्जीनियरिंग की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने वैमानिकी इन्जीनियरिंग में विशेष दक्षता हासिल की। अब्दुल कलाम वैज्ञानिक के रूप में सफर तय करते हुए वर्ष 2002 में भारत के बारहवें राष्ट्रपति चुने गए।

अब्दुल कलाम ने अपनी कड़ी मेहनत और लगन से भारत के पहले उपग्रह प्रक्षेपण यान एसएलवी-3 का निर्माण किया। कलाम ने पृथ्वी और अग्नि जैसी मिसाइलांे की डिजाइन बनाकर देश को मिसाइल शक्ति से सुसज्जित किया।

अब्दुल कलाम

पृथ्वी मिसाइल- यह जमीन से जमीन पर मार करने वाली मिसाइल है। यह 150 से 250 किलोमीटर तक स्थित दुश्मन के ठिकानों को नष्ट कर सकती है। पृथ्वी मिसाइल का वजन 14 टन है।

भारत रत्न: उच्च कोटि का विद्वान, अद्वितीय

राष्ट्र सेवा, विश्व शान्ति के लिए किए गए प्रयास

आदि के लिए भारत सरकार द्वारा दिया जाने वाला

देश का सर्वोच्च सम्मान है।

अग्नि मिसाइल- यह हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइल है। यह आकाश में 1200 से 2500 किलोमीटर तक की दूरी तक दुश्मन के जहाजों या मिसाइलों को नष्ट कर सकती है। अग्नि मिसाइल की ऊँचाई 21 मीटर तथा वजन 16 टन है।

इन मिसाइलों का उपयोग दूसरे देशों के आक्रमण के समय अपने देश की रक्षा के लिए किया जाता है। वर्ष 1998 का पोखरण (राजस्थान) परमाणु विस्फोट देश की परमाणु क्षमता विकसित करने का श्रेय अब्दुल कलाम को ही है। अब्दुल कलाम के इन विशिष्ट योगदान के कारण भारत रक्षा-विज्ञान के क्षेत्र में आत्म-निर्भर हो गया है। इस समय अमेरिका, रूस, फ्रांस, चीन तथा इजरायल के बाद भारत ऐसा छठवां देश है जिसके पास हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइल तकनीक उपलब्ध है।

27 जुलाई, 2015 को आई0आई0एम0 शिलांग, मेघालय में व्याख्यान देते समय दिल का दौरा पड़ने से डॉ0 कलाम का निधन हो गया। नवप्रवर्तक विचारों के पोषक डॉ0 कलाम अपनी मृत्यु के बाद भी वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बने रहेंगे।

रक्षा के क्षेत्र के वैज्ञानिक उपकरण दूसरे देशों को भारत पर हमला करने अथवा उसे अपने अधीन करने से रोकते हैं सो ये शांति के उपकरण हैं।

- अब्दुल कलाम

शब्दावली -

परमाणु रिएक्टर - एक ऐसा उपकरण जिसमें परमाणु और यूरेनियम की प्रतिक्रिया से विद्युत उत्पन्न की जाती है।

मिसाइल या प्रक्षेपास्त्र - किसी उपकरण के माध्यम से फेंककर मारा जाने वाला अस्त्र।

इलेक्ट्रान की वर्षा - परमाणु की बाह्य परिधि से इलेक्ट्रानों का वायुमण्डल में बिखर जाना।

परमाणु विस्फोट - परमाणुओं के नाभिक में विद्यमान प्रोटान तथा न्यूट्रान कणों के विखण्डन को परमाणु विस्फोट कहते हैं।

प्रक्षेपक यान एसएलवी 3 - यह रोहणी नामक कृत्रिम उपग्रह को अन्तरिक्ष में छोड़ने वाला यन्त्र है।

अभ्यास प्रश्न

1. सर सी0वी0 रमन का जीवन परिचय लिखिए। सी0 वी0 रमन की प्रमुख उपलब्धियाँ कौन-कौन सी हैं ?

2. डॉ0 होमी जहाँगीर भाभा के जीवन और उपलब्धियों के विषय में लिखिए।

3. अब्दुल कलाम के जीवन परिचय का उल्लेख संक्षेप में कीजिए एवं विज्ञान के क्षेत्र में उनके योगदान को विस्तार से लिखिए ?

4. निम्नलिखित के विषय में पता करके लिखिए-

पीएच0डी0, पद्म भूषण, भारत रत्न, नोबेल पुरस्कार

5. निम्नलिखित का उत्तर संक्षेप में लिखिए-

1. मिसाइल क्या है ?

2. वैज्ञानिक परीक्षण क्यों किए जाते हैं ?

3. सूर्य के प्रकाश में कितने रंग होते हैं ?

4. पानी का रंग नीला क्यों दिखाई पड़ता है ?

5. हवा से हवा में मार करना, जमीन से जमीन में मार करने का क्या आशय है?

6. निम्न तालिका को पूरा कीजिए -

क्षेत्र	सर सी0वी0 रमन	डॉ0 होमी जहाँगीर भाभा	डाँ अब्दुल कलाम
1. शिक्षा			
2. वैज्ञानिक खोजें			
3. प्राप्त सर्वोच्च पुरस्कार/सम्मान			
4. वैज्ञानिक केन्द्रों की स्थापना			

7. पता करें

(अ) कड़ी मेहनत के बाद लोग हाँफते क्यों हैं ?

(ब) शरीर से पसीना क्यों निकलता है ?

(स) ठंड में प्रायः कँपकपी क्यों छूटती है ?

8. पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमते हुए एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है। यदि पृथ्वी आपके जन्म के बाद 15 वीं बार चक्कर लगा रही है तो आपकी उम्र क्या है ?

पाठ - 36

लोकनायक जयप्रकाश नारायण

समय-समय पर भारत भूमि में कुछ ऐसी महान विभूतियाँ जन्म लेती रही हैं जिनकी विशिष्ट क्षमताओं तथा उर्वर विचारों से देश तथा समाज को नई दिशा प्राप्त होती रही है। 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय क्षितिज पर ऐसे ही एक महान व्यक्तित्व का उदय हुआ, जिन्हें हम

लोकनायक जयप्रकाश नारायण के रूप में जानते हैं।

जयप्रकाश नारायण का जन्म बिहार के सिताबदियारा गाँव में (वर्तमान उत्तर प्रदेश) 11 अक्टूबर, 1902 को हुआ। जयप्रकाश जी पिता हरसूदयाल एवं माता श्रीमती फूलरानी की योग्य संतान थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा पटना के कालेजिएट स्कूल से हुई। आपने हाईस्कूल परीक्षा विशेष योग्यता के साथ उत्तीर्ण की। आगे की शिक्षा के लिए इन्होंने पटना कालेज में प्रवेश लिया। जय प्रकाश बाबू विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने 1922 ई0 में उच्च शिक्षा के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। अमेरिका में ही वे माक्र्सवादी विचारों के प्रभाव में आए और सारी दुनिया के लिए माक्र्सवाद के विचारों का समर्थन किया।

जयप्रकाश नारायण एक कर्म योद्धा थे। उनमें बाल्यकाल से ही निडरता, नैतिक साहस, मैत्री, त्याग और देशवासियों के लिए अटूट प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्वदेश लौटने के बाद वे भारतीय राजनीति में सक्रिय हो गए। इन दिनों भारत में गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन संचालित था। एक सच्चे राष्ट्रभक्त के रूप में वे स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ गए। अब तक जयप्रकाश जी पूरी तरह समाजवादी सिद्धान्तों से प्रभावित हो चुके थे। उनके तीव्र विरोध को देखते हुए अंग्रेज सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के लिए वे जेल से भाग निकले किन्तु दुर्भाग्यवश 18 सितम्बर, 1943 को लाहौर रेलवे स्टेशन पर पुनः गिरतार कर लिए गए। वे अप्रैल 1946 को रिहा किए गए और पुनः भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। गांधी जी जयप्रकाश को भारतीय समाज का सबसे बड़ा विद्वान मानते थे। गांधी जी ने 1946 में उनका नाम कांग्रेस अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया किंतु कांग्रेस की कार्यकारिणी ने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने 1948 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस छोड़कर भारतीय समाजवादी पार्टीकी स्थापना की।

जयप्रकाश जी के हृदय में अंत्योदय एवं सर्वोदय की विचारधारा व्यावहारिक जीवन में उतरने के लिए आतुर थी, इसी समय 1952 में ये आचार्य बिनोवा भावे के नेतृत्व में चलाए जा रहे सर्वोदय आंदोलन, भूदान आंदोलन की ओर आकर्षित हुए। वे सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र के आमूल परिवर्तन के पक्षधर थे। उन्होंने सरकार एवं सत्ता में कोई पद स्वीकार नहीं किया।

जयप्रकाश जी की दृष्टि में समाजवाद का उद्देश्य समाज का समन्वित विकास करना था। वह सक्रिय राजनीति से अवश्य दूर थे किंतु समाजवाद के सिद्धांतों के प्रति उनकी जागरूकता निरंतर बनी रही। 1974 और उसके बाद भी

अंत्योदय के प्रति उनके विचार निरंतर पुष्ट होते गए।

15 मार्च, 1977 को प्रेस के माध्यम से राष्ट्र के नाम संदेश में उन्होंने कहा था- 'मेरे सपनों के भारत में प्रत्येक जन, प्रत्येक साधन निर्बल की सेवा में समर्पित हैं जिसके लोग 'अंत्योदय' अर्थात सबसे निर्बल और निर्धनतम व्यक्ति के कल्याण में संलग्न हैं। मेरे सपनों के भारत में प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक आदमी के काम में हाथ बँटाता है, हाँ अधिकारी और जन-प्रतिनिधि जनता के सेवक हैं और यदि वे गलत रास्ते पर चलें, तो जनता को उन्हें रोकने का अधिकार है। जहाँ किसी भी पदाधिकारी को कोई विशेषाधिकार नहीं बल्कि जनता द्वारा सौंपा गया विश्वास समझा जाता है। संक्षेप में मेरे सपनों का भारत एक स्वतंत्र, प्रगतिशील और गांधी जी के पद-चिह्नों पर चलने वाला भारत है।' लोकनायक जयप्रकाश के ये उद्गार सदैव हमारा पथ प्रदर्शन करते रहेंगे।

जयप्रकाश बाबू ने बताया कि समाजवाद भारतीयता का विरोधी नहीं है बल्कि भारतीय संस्कृति के मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए भी हम देश में समाजवाद ला सकते हैं क्योंकि भारतीय परंपराएँ कभी शोषणवादी नहीं रही हैं। अरण्यकालीन संस्कृति से ही भारत में विश्वबंधुत्व और सहयोग को सदैव सर्वोपरि सम्मान दिया जाता रहा है। वास्तव में भारतीय संस्कृति में सन्निहित आधारभूत आदर्शवाद वास्तविक समाजवाद है।

जयप्रकाश नारायण के समग्र जीवन दर्शन से स्पष्ट है कि वे 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के वास्तविक पोषक थे। उनके विचार उनके उज्ज्वल इतिहास का यशोगान करते हैं। एक सर्वोदयी नेता के रूप में उनके कार्यकलाप देशोत्थान के लिए बहुमूल्य सिद्ध हुए हैं।

भारतीय राजनीति के विस्तृत आकाश का यह ज्वाजल्यमान नक्षत्र 8 अक्टूबर, 1979 को सदा सर्वदा के लिए अस्त हो गया। निश्चित रूप से वे आज हमारे बीच नहीं हैं पर उनके विचार, उनके सिद्धांत, भारतीय राष्ट्रीय एकता, अखंडता एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए सदैव प्रासंगिक बने रहेंगे।

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

1. जयप्रकाश नारायण का जन्म कब और कहाँ हुआ ?
2. जयप्रकाश नारायण के माता-पिता का नाम बताइए।
3. गांधी जी ने समाजवाद का सबसे बड़ा विद्वान किसको माना ?
4. जयप्रकाश नारायण के राष्ट्रवाद पर क्या विचार थे ? वर्णन कीजिए।

पाठ - 37

G67AWF

भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री

श्रीमती कृष्णा हठी सिंह ने अपनी पुस्तक 'हम नेहरू' में एक प्रसंग का उल्लेख किया है। उनके पास बैठी नन्हीं इन्दु कुछ बुदबुदा रही थी। उन्होंने पूछा "यह क्या हो रहा है ?" इन्दु ने अपने घने काले बालों से घिरे चमकते चेहरे को उठाया और दृढ़ता से कहा "जोन आफ आर्क बनने की कोशिश कर रही हूँ। एक दिन उसी की तरह मैं भी अपने लोगों की सेवा करूँगी उनका नेतृत्व करूँगी" आगे चलकर वह नन्ही बच्ची इन्दु भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी के नाम से प्रसिद्ध हुई इन्दिरा जी का बचपन का नाम इन्दिरा प्रियदर्शिनी था। सब प्यार से इन्हें इन्दु बुलाते थे।

श्रीमती इन्दिरा गांधी

जन्म - 19 नवम्बर 1917

स्थान - इलाहाबाद

पिता का नाम - पं. जवाहर लाल नेहरू

माता का नाम - श्रीमती कमला नेहरू

पति का नाम - श्री फिरोज गांधी

मृत्यु - 31 अक्टूबर 1984

पं0 मोती लाल नेहरू की पौत्री तथा पं0 जवाहर लाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा के रोम-रोम मंे देश-प्रेम की भावना थी। जब वह मात्र तेरह वर्ष की थीं एक दिन कांग्रेस पार्टी के कार्यालय में जा पहुँचीं और बोलीं ''मुझे भी कांग्रेस का सदस्य बनना है।''

उनसे कहा गया, ''तुम अभी बहुत छोटी हो बड़ी हो जाओ तुम्हें सदस्य बना दंेगे'' इन्दिरा जी को यह बात जँची नहीं। उन्हांेने संकल्प किया कि मैं अपनी कांग्रेस स्वयं बनाउँगी । उन्होंने बच्चों की बिग्रेड बनायी। इसमें वयस्क शामिल नहीं हो सकते थे। इन्दिरा जी ने इसका नाम ''वानर सेना'' रखा। इस ''वानर सेना'' का मुख्य कार्य स्वतंत्रता सेनानियों की सहायता करना था।

वानर सेना के बालक-बालिकाएँ सन्देश पहुँचाने, प्राथमिक सहायता करने, खाने की व्यवस्था करने तथा झण्डा फहराने जैसे सरल परन्तु महŸवपूर्ण कार्य करते थे।

पण्डित जवाहर लाल नेहरू अपनी प्रियदर्शिनी को ऐसी शिक्षा देना चाहते थे कि, उनके व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास हो सके। पं0 नेहरू व उनकी पत्नी के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय होने के कारण उन्हें कई बार जेल जाना पड़ा । इसका प्रियदर्शिनी की शिक्षा पर असर पड़ा। वे लगातार एक ही जगह स्थिर रहकर शिक्षा ग्रहण न कर सकीं। उन्हांेने दिल्ली, इलाहाबाद और पुणे के स्कूलों में शिक्षा पायी। पुणे से मैटीªकुलेशनश्की परीक्षा पास करने के बाद वे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्ति निकेतन में आ गयीं। यहाँ पढ़ाई लिखाई के साथ उन्हांेनें नन्दलाल बोस से चित्रकला सीखी।

एक बार एक विदेशी प्रोफेसर कला भवन मंे भाषण देने आए। कलाभवन में जूते पहन कर जाना मना था। वे भूलवश जूते पहन कर कलाभवन में प्रवेश कर गए। जब तीन चार

दिन तक ऐसा ही होता रहा तो एक दिन प्रोफेसर के प्रवेश करते ही सारे विद्यार्थी अनुशासित तरीके से कतारबद्ध होकर कक्ष से बाहर हो गये। शिकायत गुरुदेव के पास पहुँची। जाँच करने पर मालूम हुआ कि विरोधी दल का नेतृत्व इन्दिरा ने किया था। गुरुदेव मुस्कराये सत्य की ऐसी पकड़ और अनुशासन के प्रति ऐसी आस्था देखकर उन्होंने उसी दिन भविष्यवाणी की "यह बालिका असाधारण है और इसमें संकल्पों को जीने की शक्ति है।" इन्दिरा जी के व्यक्तित्व पर पं0 नेहरू का बहुत प्रभाव पड़ा। पिता-पुत्री के सम्बन्ध बेहद आत्मीय थे। स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान पं. नेहरू को कई बार जेल जाना पड़ा वे जेल से पत्रों द्वारा पुत्री से सम्पर्क बनाए रखते थे। पत्रों का संग्रह 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' से प्रकाशित हुआ है। नेहरू जी द्वारा नैनी जेल से इन्दिरा जी को लिखे एक पत्र के कुछ अंशः-

कई बार हम संदेह में भी पड़ जाते हैं कि हम क्या करें क्या न करें? यह निश्चय करना कोई सरल कार्य नहीं है। जब भी तुम्हें ऐसा संदेह हो तो ठीक बात का निश्चय करने के लिए मैं तुम्हें एक छोटा सा उपाय बताता हूँ। तुम कोई भी काम ऐसा न करना जिसे दूसरों से छिपाने की इच्छा तुम्हारे मन में उठे। किसी बात को छिपाने की इच्छा तभी होती है जब तुम कोई गलत काम करती हो। बहादुर बनो और सब कुछ स्वयं ही ठीक हो जायेगा। यदि तुम बहादुर बनोगी तो तुम ऐसी कोई बात नहीं करोगी जिससे तुम्हें डरना पड़े या जिसे करने में तुम्हें लज्जित होना पड़े।

निर्भीकता और आत्मविश्वास जैसे गुण उन्हें पिता से विरासत में मिले थे। इन्दिरा जी कठिन परिस्थितियों में धैर्य खोये बिना स्वविवेक से निर्णय लेने में सक्षम थीं। इन विलक्षण गुणों ने इन्दिरा जी को राजनीति के उच्चशिखर पर पहुँचा दिया। उनके पिता ने उन्हें गहन राजनीतिक प्रशिक्षण दिया था। वह लगातार 29 वर्ष तक पिता के साथ कंधे से कंधा मिलाकर राजनीतिक कार्यो में उनकी सहायता करती रहीं। इन्दिरा जी ने अपने पिता के साथ अनेक देशों की यात्रायें भी की। इस बीच सन 1942 ई0 में श्री फिरोज गांधी के साथ उनका विवाह हो गया। उनके दो पुत्र थे राजीव गांधी व संजय गांधी ये दोनों भी राजनीति के क्षेत्र में काफी सक्रिय रहे। राजीव गांधी उनकी मृत्यु के बाद प्रधानमंत्री बने परन्तु संजय गांधी का युवावस्था में एक दुर्घटना में देहान्त हो गया, इन्दिरा जी ने इस सदमे को बहुत धैर्य व साहस से झेला।

इन्दिरा जी का राजनीतिक सफरनामा:-

स सन 1958 में वे कांग्रेस के केन्द्रीय संसदीय बोर्ड की सदस्या बनीं।

स सन 1959 मंे कांग्रेस अध्यक्ष चुनी गयीं।

स सन 1962 में यूनेस्को अधिशासी मण्डल की सदस्य चुनी गयीं।

स श्री लाल बहादुर शास्त्री के मंत्रिमण्डल में सूचना एवं प्रसारण मंत्री बनीं।

स 24 जनवरी 1966 से 24 मार्च 1977 तक प्रधानमंत्री पद पर रहीं।

स दूसरी बार 14 जनवरी 1980 से 31 अक्टूबर 1984 तक प्रधानमंत्री पद पर रहीं।

प्रधानमंत्री के रूप में कार्य करते हुए उन्हें भारत-पाक युद्ध का भी सामना करना पड़ा। इस कठिन समय मंे उन्हांेने अभूतपूर्व धैर्य और साहस का परिचय दिया। इन्दिरा जी के कुशल नेतृत्व मंे भारतीय सेना ने पकिस्तानी सेना के छक्के छुड़ा दिए। श्रीमती गांधी के अदम्य साहस के बारे में एक ब्रिटिश दैनिक की संवाददाता ने लिखा था कि अनेक भारतीय सैनिक अधिकारियों तथा जवानों ने मुझे बताया कि अक्सर घमासान लड़ाई के बीच साड़ी पहने एक दुबली सी आकृति आ जाती थी। वह इन्दिरा जी हुआ करती थीं जो कि फौज की ख़ैरियत जानने के लिए उत्सुक रहती थीं।

एक महŸवपूर्ण निर्णय-

सन् 1971 ई0 की लड़ाई मंे श्रीमती गांधी ने एक तरफा युद्ध विराम की घोषणा की और पाकिस्तान की पराजय हुयी। इसी युद्ध के परिणामस्वरूप बांग्ला देश का जन्म हुआ। इसका श्रेय इन्दिरा जी को जाता है। इस युद्ध से भारत एशिया की प्रमुख शक्ति बनकर उभरा और इन्दिरा जी विश्व की प्रमुख नेता के रूप मंे उभर कर सामने आयीं।

इन्दिरा जी के राजनैतिक जीवन में यों तो कई उतार -चढ़ाव आये परन्तु सन 1977 ई0 के आम चुनाव में उनकी पार्टी की हार से उन्हें कठिन संघर्ष का सामना करना पड़ा । दरअसल श्रीमती गांधी द्वारा आपातकाल की घोषणा ही उनकी पार्टी की हार का कारण बनी। उनके इस निर्णय से जनता रुष्ट हो गयी परन्तु वे जनता पर अपने अटूट विश्वास के सहारे पुनः

सत्तारूढ़ हुयीं। वे सदैव विश्वशांति की प्रबल पक्षधर रहीं। उनका व्यक्तित्व ऐसे समय में उभरा जब राष्ट्र अनेक प्रकार के संकट और समस्याओं से घिरा था। एक राजनीतिक योद्धा के रूप मंे उन्हांेने इस देश की सेवा अपनी सम्पूर्ण क्षमता से की, ताकि विश्व में देश का मान-सम्मान बढ़े। अपने कार्यकाल में उन्होंने अनेक महŸवपूर्ण कार्यक्रम चलाये। उन्होंने देश की दुखती रग को समझा और ‘गरीबी हटाओ’ का नारा दिया।

बीस सूत्रीय कार्यक्रम के द्वारा इन्दिरा जी ने अनेक मोर्चों पर महŸवपूर्ण उपलब्धियाँ अर्जित कीं। विज्ञान और तकनीकी विकास के नए द्वार खोले परमाणु शक्ति का विकास किया तथा देश को अन्तरिक्ष युग मंें पहुँचाया। कैप्टन राकेशश्शर्मा द्वारा अंतरिक्ष यात्रा उनके प्रधानमंत्रित्व काल की महŸवपूर्ण उपलब्धि है। वे निरन्तर देश को प्रगतिशील तथा समृद्धिश्शाली बनाने के प्रयास मंे जुटी रहीं। इन्दिरा जी के शासनकाल में खेलकूद को बहुत प्रोत्साहन मिला। सन् 1982 ई0 में एशियाड खेलों का भव्य आयोजन हुआ। उन्हें अपने जीवन काल में देशवासियों का अपार स्नेह और सम्मान मिला। उनके रोम-रोम में देशप्रेम व्याप्त था। 30 अक्टूबर 1984 ई0 को उडी़सा मंे दिया गया उनका भाषण इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

“देश सर्वोपरि है। अगर मैं देश की सेवा करते हुए मर भी जाती हूँ तो मुझे इस पर नाज होगा। मुझे विश्वास है कि मेरे खून का हर कतरा इस राष्ट्र के विकास में योगदान करेगा और इसे मजबूत और गतिशील बनाएगा”।

श्रीमती इन्दिरा गांधी

यह इस देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि अपने इस भाषण के अगले ही दिन भारत की यह महान सुपुत्री इन्दिरा अपने ही अंगरक्षक की गोलियों का निशाना बन गयीं। यद्यपि आज वे हमारे बीच नहीं है परन्तु उनकी स्मृतियाँ हर भारतीय के दिल मंे चिरस्थायी रहेगी।

अभ्यास-प्रश्न

1. पं0 नेहरू इन्दिरा जी को किस प्रकार की शिक्षा देना चाहते थे? इसके लिए उन्हांेने क्या किया?

2. “वानर सेना” किस प्रकार स्वतन्त्रता सेनानियों की सहायता करती थी?

3. प्रधानमंत्री के रूप मंे इन्दिरा जी की महŸवपूर्ण उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।

4. इन्दिरा जी के किन गुणों ने आपको सर्वाधिक प्रभावित किया ?

5. सही (√)अथवा गलत (ग्) का निशान लगाइएः-

अ. इन्दिरा जी ने वानर सेना का गठन किया।

ब. इन्दिरा जी को अनुशासन मंे रहना पसन्द नहीं था।

स. सन 1962 में वे यूनेस्को अधिशासी मण्डल की अध्यक्ष बनीं।

द. भारत के प्रथम अन्तरिक्ष यात्री राकेशश्शर्मा थे।

6. नीचे लिखे विकल्पों में से सही उत्तर चुनकर लिखिए .

क. इन्दिरा जी को गहन राजनीतिक प्रशिक्षण दिया -

अ. पं. मोतीलाल नेहरू ने ब. पं. जवाहर लाल नेहरू ने

स. महात्मा गांधी ने द. श्री फिरोज गांधी ने

ख. इन्दिरा जी की हत्या कब हुई -

क. 30 अक्टूबर 1984 ई0 ख. 31 अक्टूबर 1984 ई0

ग. 31 अक्टूबर 1983 ई0 घ. 30 अक्टूबर 1974 ई0

7. स्वयं कीजिए -

1. अन्य पुस्तकों से इन्दिरा जी के जीवन की कुछ महŸवपूर्ण घटनाएँ पढ़िए और कक्षा मंे बताइए।

2. किसी स्थानीय महिला नेता की सामाजिक कार्य कुशलता, सेवा एवं अन्य गुणों के बारे में लिखिए।

3. जेल मंे रहकर नेहरू जी ने इन्दिरा के नाम ढेर सारे पत्र लिखे। इन पत्रों का संकलन 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' पुस्तक मंे संकलित कर प्रकाशित किए गए। अपने शिक्षक/शिक्षिका से इन पत्रों के बारे में चर्चा कीजिए।

पाठ . 38

G6G6Y3

वर्तमान काल के महान संगीतज्ञ

संगीत के क्षेत्र में भारत हमेशा ही सम्पूर्ण विश्व का सिरमौर रहा है। यहाँ के संगीत ने पत्थरों को पिघला दिया, बुझते दीपों को प्रज्ज्वलित कर दिया और विश्वजन को संगीत रस से सराबोर कर दिया।

यहाँ हम संगीत के क्षेत्र की ऐसी विलक्षण प्रतिभाओं के बारे में जानेंगे,जिन्होनें बीसवीं शताब्दी में भारतीय संगीत को नयी ऊँचाइयों तक पहँुचाया और विश्वसंगीत में भारत के वैशिष्ट्य को बनाए रखा।

देश प्रेम और अखण्डता की सरगम: - स्वर कोकिला लता मंगेशकर

गिनीज़ बुक आँफ वर्ल्ड रिकार्ड विश्व का वह महŸवपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमंे विश्व के आश्चर्य अजूबे अंकित किये जाते हैं। क्या आप जानते हैं ? भारत की वह कौन सी गायिका है, जिसके नाम सर्वाधिक गीत गाने का रिकार्ड इस पुस्तक मंे अंकित है ? वह भारत कोकिला, स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर हैं जिन पर हम सब भारतीयों को गर्व है।

लता मंगेशकर का जन्म 28 सितम्बर 1929 को इन्दौर में हुआ। इनकी माता का नाम शुद्धमती तथा पिता का नाम पण्डित दीनानाथ मंगेशकर था। पिता श्शास्त्रीय गायक थे और थियेटर कम्पनी चलाते थे। वे ग्वालियर घराने में संगीत की शिक्षा भी देते थे। उन्होंने लता

को पाँच वर्ष की उम्र से ही संगीत की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। लता की संगीत में विशेष प्रतिभा देखकर वे कहा करते, ''यह लड़की एक दिन चमत्कार साबित होगी।''

लता ने अपना प्रथम आकाशवाणी कार्यक्रम 16 दिसम्बर 1941 को प्रस्तुत किया जिसे सुनकर माता-पिता गद्गद हो गए। दुर्भाग्य से 1942 में दीनानाथ जी की मृत्यु हो गयी और परिवार का सम्पूर्ण दायित्व लता पर आ गया। उनके भाई हृदयनाथ और बहिनें आशा, ऊषा व मीना उस समय अत्यन्त छोटे थे। सन् 1942 से 1948 तक लता ने मराठी और हिन्दी की लगभग छः फिल्मों में अभिनय किया और परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारा।

लता मंगेशकर ने पहली बार मराठी फिल्म के लिए गाना गाया, जिसे सम्पादन के समय निकाल दिया गया। पहली हिन्दी फिल्म जिसके लिए उन्होंने गीत गाया वह थी ''आपकी सेवा में'' यह फिल्म 1947 में आयी पर लता के गाने को कोई ख्याति न मिली। उस समय फिल्मी दुनिया में भारी-भरकम आवाज वाली गायिकाओं का युग था। दुर्भाग्यवश 1948 में आयी फिल्म शहीद में भी लता द्वारा गाये गीत को फिल्म निर्माता ने यह कहकर फिल्म से निकाल दिया कि उनकी आवाज बहुत महीन (पतली) है । इस फिल्म के संगीतकार गुलाम हैदर ने उस वक्त फिल्म निर्माता के सामने ही घोषणा की, ''मैं आज ही कहे दे रहा हूँ कि यह लड़की बहुत शीघ्र संगीत की दुनिया पर छा जाएगी।'' अपने इसी विश्वास के बल पर गुलाम हैदर ने लता को 'मजबूर' फिल्म में फिर से गवाया। गाना था ''दिल मेरा तोड़ा'' इस गीत की रिकार्डिग के समय प्रख्यात संगीतकार हुस्नलाल भगतराम, अनिल विश्वास, नौशाद व खेमचन्द्र प्रकाश उपस्थित थे। लता जी की गायन श्शैली से प्रभावित होकर नौशाद व हुस्नलाल भगतराम ने उन्हें अपनी फिल्मों 'अंदाज' और 'बड़ी बहिन' में मौका दिया। फिर आई 'बरसात' जिसके गाने बहुत लोकप्रिय हुए और लता निरन्तर प्रसिद्धि पाती गई। इस प्रसिद्धि के पीछे थी उनकी कड़ी मेहनत, दृढ़ संकल्प और संगीत के प्रति समर्पण।

1949 में लता जी के स्वर से सजी चार फिल्में आयीं 'बरसात', 'अंदाज', 'दुलारी', और 'महल', इनमें महल का गीत 'आयेगा आने वाला' अत्यन्त लोकप्रिय हुआ और लता जी श्रोताओं के दिलो दिमाग पर छा गयीं। तब से आज तक वे फिल्म संगीत में साम्राज्ञी के पद पर विराजमान हैं।

ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा की धनी लता ने हर भाव और मनःस्थिति के अनुरूप अपने स्वर को ढाला। शास्त्रीय संगीत का उत्कृष्ट ज्ञान, शहद से भी मीठा भावरंजित स्वर जो श्रोताओं को अपने साथ एकाकार कर लेता है, उनकी बहुत बड़ी खूबी है।

इसके साथ ही जो अनुपम चमत्कार उन्होंने कर दिखाया है, वह है अपनी राष्ट्रभाषा तथा देश की सभी प्रमुख लगभग सोलह प्रान्तीय भाषाओं में उतनी ही सहजता और निष्ठा से गीत, भजन और लोकगीत गाना, जितना वे अपनी मातृभाषा मराठी में गाती हैं। गाते समय वे शब्दों के सही उच्चारण पर विशेष ध्यान देती हैं। अपने उच्चारण में शुद्धता लाने के लिए ही उन्होंने एक अध्यापक से उर्दू सीखी।

लता जी की प्रसिद्धि के पीछे उनकी लगन, परिश्रम व तपस्या के साथ-साथ विराट अखण्ड भारत के प्रति उनका गहरा प्रेम, निष्ठा और उसके कल्याण की भावना भी है। सन 1962 में हुई चीनी आक्रमण के बाद जब लता जी ने रुंधे कण्ठ से ''ऐ मेरे वतन के लोगों'' गाया तो सारा देश तड़प उठा। तत्कालीन प्रधानमंत्री पंण्डित जवाहर लाल नेहरू की आँखें भर आयीं। लता जी ने इस गीत की पंक्ति ''जो खून गिरा सरहद पर वह खून था हिन्दुस्तानी'' को गाकर देश की एकता और अखण्डता की मशाल जलायी उससे दुःख की घड़ी में भी देशवासियों का हृदय रोशन हो उठा। आज भी यह गीत सुनकर लोगों की आँखों में आँसू आ जाते हैं।

लता जी:- कुछ रोचक बातें:-

छः-सात वर्ष की उम्र में लता जी छत पर कोई धुन गुनगुना रही थीं। अचानक वे गिर गयीं और मूर्च्छित हो गयीं। चेतनावस्था में आने पर वे पुनः हँसती खिलखिलाती उसी धुन को गुनगुनाने लगीं, जिसे मूर्च्छित होने से पूर्व गुनगुना रही थीं।

Û लता जी के स्वर की मधुरता का एक रहस्य यह भी है कि वे कोल्हापुरी काली मिर्च बहुत अधिक खाती है ।

Û प्रत्येक गीत गाने से पूर्व लता जी उसे अपनी हस्तलिपि में लिखती हैं।

आश्चर्यजनक लता जी -

लता जी की इच्छा है कि अगर उनका पुनर्जन्म हो तो भारत में ही हो।

Û लता जी जिस मंच पर भी गाती हैं, हमेशा नंगे पाँव गाती हैं। ऐसा वे मंच के सम्मान मंे करती हैं।

Û लता जी तीनों सप्तक में गा सकती है जबकि अधिकंाश गायक दो ही सप्तक में गा पाते है।

Û लता जी रॉयल अल्बर्ट हॉल, लंदन में कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाली प्रथम भारतीय महिला हैं। (सन् 1974)

Û लता जी सवार्च्च भारतीय नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' प्राप्त करने वाली प्रथम पार्श्व गायिका हैं।

Û लता जी अभिनेत्रियों की तीन पीढ़ियों -मधुबाला, जीनत अमान व काजोल के लिए पार्श्वगायन कर चुकी हैं और अभी भी पार्श्वगायन में पूर्णतया सक्रिय हैं।

Û लता जी लगभग 20 भाषाओं में 50,000 से अधिक गीत गाकर विश्वरिकार्ड बना चुकी हैं जिसके लिए उनका नाम गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में अंकित हैं।

Û भारत मंे केवल दो ही व्यक्तित्व हैं जिन्हें भारत रत्न व दादा साहब फाल्के दोनांे सम्मान प्राप्त हैं- सत्यजित रे और लता मंगेशकर ।

Û लता जी को न्यूयार्क विश्वविद्यालय समेत छह विश्वविद्यालयों ने डॉक्टरेट की मानद उपाधि से विभूषित किया है।

Û रायल अल्बर्ट हॉल लन्दन ने कम्प्यूटर की सहायता से लता की आवाज का ग्राफ तैयार किया और पाया कि उनकी आवाज विश्व की सबसे आदर्श आवाज है।

Û लता मंगेशकर देश की संभवतः ऐसी एकमात्र हस्ती हैं जिनके जीवनकाल में ही उनके नाम पर 'लता मंगेशकर' पुरस्कार दिया जा रहा है। यह पुरस्कार सन 1984 से मध्यप्रदेश सरकार तथा 1992 से महाराष्ट्र सरकार द्वारा दिया जाता है।

प्रमुख सम्मान -

लता जी पिछले दशकों में विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित की जा चुकी हैं जिनमें उल्लेखनीय है - फिल्म फेअर पुरस्कार, महाराष्ट्र रत्न पुरस्कार, बंगाल फिल्म पत्रकार संगठन पुरस्कार, पद्म श्री, पद्मभूषण, पदम विभूषण, वीडियोकॉन लाइफ टाइम एचीवमेण्ट पुरस्कार, जीवन गौरव पुरस्कार, नूरजहाँ सम्मान, हाकिम खान सुर अवार्ड, स्वरभारती पुरस्कार, 250 ट्राफी ,150 गोल्डन डिस्क, प्लेटिनम डिस्क व हिन्दी सिनेमा का सर्वोच्च 'दादा साहब फाल्के' पुरस्कार तथा भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न (2001)'

लता जी: महŸवपूर्ण टिप्पणियाँ:-

विभिन्न ख्याति प्राप्त व्यक्तित्वों ने लता जी के बारे में समय-समय पर महŸवपूर्ण टिप्पणियाँ की हैं। उनमें से कुछ हैं:

राजकपूर: "उनके कण्ठ मंे सरस्वती विराजमान हैं।"

नरगिस दत्त: "लता जी किसी तारीफ की नहीं, पूजा के योग्य हैं।"

अभिताभ बच्चन: पड़ोसी देश के मेरे एक मित्र कहते हैं "हमारे देश में सब कुछ है सिवाय ताजमहल और लता मंगेशकर के।"

जगजीत सिंह: बीसवीं सदी की केवल तीन चीजें याद रखी जाएंगी - लता जी का जन्म, मानव की चाँद पर विजय और बर्लिन की दीवार ढहना।

जावेद अख्तरः जिस प्रकार एक पृथ्वी है, एक सूर्य है, एक चंद्रमा है उस प्रकार एक ही लता है। निःसन्देह लता जी हम सब भारतीयों का गौरव है।

टिप्पणीः-

सप्तकः संगीत में तीन सप्तक होते है। मन्द्र सप्तक, मध्य सप्तक और तार सप्तक। विरले गायक ही इन तीनों सप्तकों में गायन कर पाते हैं।

शहनाई के जादूगरः- उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ

26 जनवरी 1950 स्वतंत्र भारत के प्रथम गणतन्त्र की संध्या पर शहनाई से राग काफी में उभरी स्वरलहरियों ने सम्पूर्ण वातावरण में जैसे सुरों की गंगा प्रवाहित कर दी है। इस दिवस का हर्षोल्लास द्विगुणित हो गया। श्रोता भाव-विभोर होकर स्वरों की इस अपूर्व बाजीगरी का आनन्द उठा रहे थे और मन ही मन प्रशंसा कर रहे थे उस कलाकार की, जो शहनाई से उभरे स्वरों के रास्ते उनके हृदयों में प्रवेश कर रहा था।

यह शहनाई वादक थे उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ जो स्वतंत्र भारत की प्रथम गणतंत्र दिवस की संध्या पर लाल किले मंे आयोजित समारोह मंे शहनाई बजा रहे थे। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ एक ऐसा कोमल हृदय मानव जो संगीत के द्वारा आत्मा की गहराइयों में उतर जाते थे। ऐसा व्यक्तित्व जो विश्वविख्यात शहनाई वादक के रूप मे जीते जी किंवदन्ती बन गए।

बिस्मिल्लाह खाँ का जन्म 21 मार्च 1916 को डुमराँव (बिहार) में हुआ। इनके पूर्वज डुमराँव रियासत में दरबारी संगीतज्ञ थे। इन्हें संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा चाचा अलीबक्श विलायत से मिली। अलीबक्श वाराणसी के विश्वनाथ मन्दिर में शहनाई बजाते थे। चाचा की शिक्षा से जहाँ उनमें संगीत के प्रति गहरी समझ विकसित हुई वहीं सभी धर्मो के प्रति आदर का भाव

भी जाग्रत हुआ। उन्हांेने अपना जीवन संगीत को समर्पित कर दिया और शहनाई वादन को विश्वस्तर पर नित नयी ऊँचाइयाँ देने का निश्चय कर लिया ।

बिस्मिल्लाह खाँ संगीत और पूजा को एक ही दृष्टि से देखते थे। उनका मानना था कि संगीत, सुर और पूजा एक ही चीज है। बिस्मिल्लाह खाँ ने अपनी शहनाई की गूँज से अफगानिस्तान, यूरोप, ईरान, इराक, कनाडा, अफ्रीका, रूस, अमेरिका, जापान , हांगकांग समेत विश्व के सभी प्रमुख देशों के श्रोताओं को रसमग्न किया। उनका संगीत समुद्र की तरह विराट है लेकिन वे विनम्रतापूर्वक कहते थे। ‘‘मैं अभी मुश्किल से इसके किनारे तक ही पहँुच पाया हूँ मेरी खोज अभी जारी है।’’

संगीत में अतुलनीय योगदान हेतु उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को देश-विदेश में विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। उन्हें भारत का सवार्ेच्च नागरिक सम्मान ‘भारत रत्न’ महामहिम राष्ट्रपति द्वारा सन् 2001 में प्रदान किया गया। संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार, तानसेन पुरस्कार, मध्य प्रदेश राज्य पुरस्कार, ‘पद्म विभूषण’ जैसे सम्मान एवं विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा उन्हें प्रदान की गयी डॉक्टरेट की उपाधियाँ उनकी ख्याति की परिचायक हैं।

खाँ साहब अत्यन्त विनम्र, मिलनसार और उदार व्यक्तित्व के धनी थे। वे सभी धर्मो का सम्मान करते थे। संगीत के प्रति पूर्णतः समर्पण, कड़ी मेहनत, घंटों अभ्यास, संतुलित आहार, संयमित जीवन और देश प्रेम के अटूट भाव एवं गुणों ने उन्हें विश्वस्तर पर ख्याति दी। अभिमान तो जैसे उन्हें छू तक नहीं गया। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ शास्त्रीय संगीत परम्परा की ऐसी महŸवपूर्ण कड़ी थे जिन पर प्रत्येक देशवासी को गर्व है। इनका देहावसान 21 अगस्त, 2006 को हुआ था।

अभ्यास-प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नांे के उत्तर दीजिए-

1. भारत की किस गायिका का नाम गिनीज बुक आँफ वर्ल्ड रिकार्ड में अंकित किया गया है ? उनका नाम इस पुस्तक में क्यों अंकित किया गया है ?

2. पण्डित जवाहर लाल नेहरू की आँखों से आँसू निकल आए-

क. आँख में कुछ गिर जाने के कारण। ख. बीमारी के कारण।

ग. बहुत अधिक प्रसन्नता के कारण।

घ. लता मंगेशकर द्वारा शहीदों की स्मृति मंे गाये गीत को सुनकर।

3. लता को निम्नलिखित सम्मानों मंे से कौन सा सम्मान प्राप्त नहीं हुआ है-

क. पदम विभूषण ख. दादा साहब फाल्के पुरस्कार

ग. नोबेल पुरस्कार घ. भारत रत्न

4. भारत के प्रथम गणतन्त्र दिवस की संध्या पर लाल किले के मंच से श्शहनाई वादन करने वाले व्यक्ति थे।

क. उस्ताद अली अकबर विलायत साहब ख. उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ साहब

ग. उस्ताद जाकिर हुसैन साहब घ. उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ साहब

5. वे कौन से गुण हैं जो उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को विशिष्ट बनाते हैं ?

निम्नलिखित महापुरुषों के चित्र के नीचे उनके नाम लिखिए।

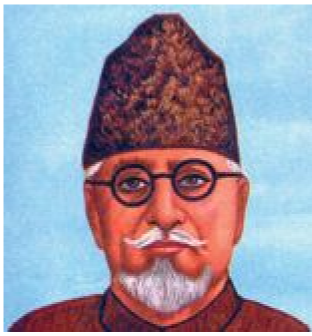 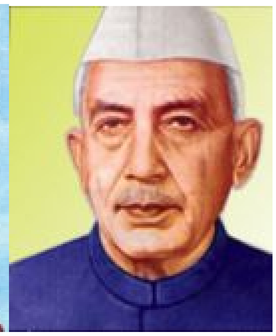

6. जानें:

अपने बड़ों से बीसवीं सदी के अन्य महान संगीतज्ञों के बारे में।

अपने गाँव/तहसील/जनपद के प्रमुख संगीतज्ञों के बारे में।

Table of Contents

1. Table of Contents
    a. सावित्री
    b. भारतीय संस्कृति के अग्रदूत
    c. भरत
    d. चाणक्य
    e. समुद्रगुप्त
    f. महाकवि कालिदास
    g. हर्षवर्धन
    h. आदि गुरु शंकराचार्य
    i. गोस्वामी तुलसीदास
    j. नामदेव
    k. अबुल फजल
    l. छत्रपति शिवाजी
    m. गुरु गोविन्द सिंह
    n. छत्रसाल
    o. टीपू सुल्तान
    p. राजा राममोहन राय
    q. महर्षि दयानन्द
    r. स्वामी विवेकानन्द
    s. लाला लाजपत राय
    t. महर्षि अरविन्द
    u. सन्त गाडगे बाबा
    v. सरोजिनी नायडू
    w. सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन
    x. मौलाना अबुल कलाम आज़ाद
    y. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर
    z. आचार्य विनोबा भावे
    aa. खान अब्दुल गफ्फार खँा
    ab. चौधरी चरण सिंह
    ac. शहीद भगत सिंह

ad. सरफरोशी की तमन्ना

ae. हमारे वैज्ञानिक

af. भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री

ag. वर्तमान काल के महान संगीतज्ञ

Table of Contents

. Table of Contents
. सावित्री
. भारतीय संस्कृति के अग्रदूत
. भरत
. चाणक्य
. समुद्रगुप्त
. महाकवि कालिदास
. हर्षवर्धन
. आदि गुरु शंकराचार्य
. गोस्वामी तुलसीदास
. नामदेव
. अबुल फजल
. छत्रपति शिवाजी
. गुरु गोविन्द सिंह
. छत्रसाल
. टीपू सुल्तान
. राजा राममोहन राय
. महर्षि दयानन्द
. स्वामी विवेकानन्द
. लाला लाजपत राय
. महर्षि अरविन्द
. सन्त गाडगे बाबा
. सरोजिनी नायडू
. सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन
. मौलाना अबुल कलाम आज़ाद
. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर
. आचार्य विनोबा भावे
. खान अब्दुल गफ्फार खँा
. चौधरी चरण सिंह
. शहीद भगत सिंह
. सरफरोशी की तमन्ना
. हमारे वैज्ञानिक
. भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री
. वर्तमान काल के महान संगीतज्ञ